विज्ञापन।

विदित हो कि शान्तरसप्रधान गौणतया शृंगारादि अखिलरसोंसे संयुक्त अध्यात्मविद्या विरोधि नानापाखण्डमतोंके सिद्धांतोंको उच्छिन्न करताहुआ संस्कृतमें प्रबोधचन्द्रोदय नामा नाटक इस धरामण्डलमें सर्वोपरि वर्तमानहै सो संस्कृतमें अतिकठिन होनेसे भाषाके अभिज्ञजनोंको दुर्विज्ञेय जानकर कवि गुलाबसिंहजीने तिसका भाषामें दोहा सवैया कवित्त सोरठों करके अनुवाद कियाहै— इस नाटकमे प्रायः वेदांतका सर्वस्व सन्निविष्टहै और इसमें ऐसी सुगमरीतिसे ब्रह्मात्म्यैक्यत्वका प्रतिपादन कियाहै कि, मन्दवैराग्यवाले पुरुषभी इस ग्रन्थके विचारसे अध्यात्मतत्त्वका लाभ करसकतेहै—यद्यपि उक्त कविजीकी भाषा बहुत सुगम और साधारण पुरुषोंकोभी समुझने योग्यहै—तथापि—कहीं कही स्थलविषे विषयको अतिकठिन होनेसे गुरोंके बिना स्वय समुझना अशक्यहै ऐसा जानकर और अधिकारीजनोंको विचारपूर्वक इसग्रन्थके अवलोकनसे बोधोत्पत्तिके अर्थ श्रीसाधुबेलाके निवासी परमदयालु पण्डित गुरुप्रसादजीने इसग्रन्थको शुद्ध करके तथा इसके नीचे बडे परिश्रमसे श्रुति स्मृति पुराण वचनोंको उद्धृत करके तथा तिनका अर्थ अतिसुगम रीतिसे दर्शायकर संस्कृत प्रबोधचन्द्रोदयनाटकके अनुसार सक्षिप्ताक्षरी टिप्पणीरूपसे प्रगट करके तथा पण्डितजीने इसटिप्पणीसहित ग्रन्थको तयार करके निज श्रीगुरुश्री १०८ मान् परमहंस-परमानन्दजीके चरणपङ्कजोंमें समर्पणकिया आगे दयार्णव श्रीगुरुदेवजीने अपने अनुग्रहसे अधिकारीजनोंके कल्याणार्थ और धर्मार्थ बाटनेके अर्थ मुद्रित करवायाहै—अब आशाहै कि इस ग्रन्थप्रतिपाद्यविषयके मनन करनेसे अधिकारी जन आवरण शक्तिविशिष्ट अज्ञाननिवृत्तिपूर्वक परमानन्दकी प्राप्तिरूप जीवन्मुक्तिके सुखका अनुभव करतेहुए पण्डितजीके परिश्रमको सफलकरेंगे इति शम्—



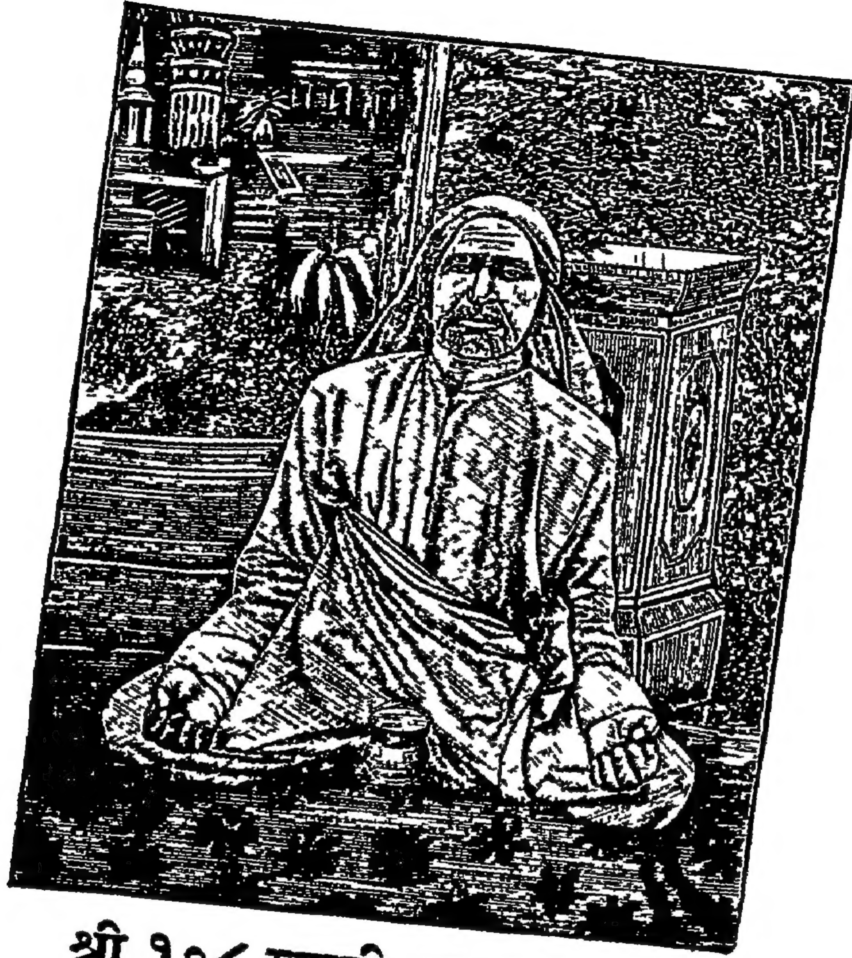
नाटकपात्र.



सूत्रधार	नाटकआचार्य.
नटी	तिसकीपत्नी.
विवेक	प्रधाननायक.
मति	तिसकीपत्नी.
वस्तुविचार	विवेककिंकर.
सन्तोष	तिसकासहचर.
पुरुष	उपनिषद्स्वामी
प्रबोधउदय	पुरुषपुत्र.
श्रद्धा	सात्विकी,राजसी, तामसी ३ प्र.
शांति	विवेकभगिनी.
करुणा	शांतिकीसखी.
मैत्री	श्रद्धासखी.
विष्णुभक्ति	उपनिषत्सखी.
उपनिषद्	वेदांतशास्त्र.
सरस्वती	विष्णुभक्तिकीसखी
क्षमा	विवेकदासी.
वैराग्य, निदिध्यासन, संकल्प	मनके पुत्र.
परिपार्श्वक, पुरुष, सारथी, प्रतिहारी	ये दूसरेहै.

महामोह	विवेकशत्रु.
चार्वाक	मोहकामित्र.
काम, क्रोध, लोभ, दम्भ, अहंकार.	ये महामोहके वजीर हैं
मन	संकल्पात्मक.
दिगंबर, भिक्षु, क्षपणक, कपालिक	ये बुद्ध जैनादि मतके प्रवर्तक हैं
मिथ्यादृष्टि	मोहपत्नी.
विभ्रमावती	तिसकीसखी
रति	कामपत्नी.
हिंसा	क्रोधपत्नी.
तृष्णा	लोभपत्नी.
वटु, शिष्य, पुरुष, दौवारिक.	ये दूसरे हैं





श्री १०८ स्वामी परमानन्दजी
उदासीन द्वारकावाले.



श्रीगणेशाय नमः ।

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

अथ श्रीमत्कवि गुलाबसिंह कृत-

प्रबोधचन्द्रोदय नाटक भाषा प्रारम्भः ।

दोहा ।

गौरीपुत्र गणेशपद, वन्दों वारंवार ॥
कार्य[1] कीजिये सिद्ध मम, देह सुबुद्धि उदार ॥ १ ॥
जाके नाम प्रतापते, जलपर शैल तराहिं ॥
वह रघुनायक दासके, सदा वसै मनमाहिं ॥ २ ॥
गुरु[2]नानक गोविन्द गुरु, जासम और न कोइ ॥
अभिवन्दन पदकमल तिन, जोर सदा कर दोइ ॥ ३ ॥
भारत भूमिपुनीत पद, तपोज्ञान अवतार ॥
मानसिंह गुरुको नमो, तारण करुणासार ॥ ४ ॥

नराज छन्द ।

प्रवोधचन्द्र नाटकं, सुवोध ग्रन्थ मैं करों ॥
अलंब साधु संगको, विचार चित्तमें धरों ॥
सुनै पढै सु जे जना, निवार मोह बन्धना ॥
लहै अपार मोक्षको, टुटै समस्त फन्धना ॥ ५ ॥

सवैया ।

भूपन बोध सुबोध नहीं अति कौतुक माहिं रहें लपटाए ॥
बोध बिना जगमोक्ष कहां इम संतसभै मुखवेद[3] अलाए ॥

---

(१) ग्रन्थकी निर्विघ्न समाप्ति रूप । (२) आदि अन्तके ग्रहणसैं दशों बादशाहोंका ग्रहण करना । (३) ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः । ज्ञानादेवतुकैवल्यम् । इत्यादिवेद ॥

अंतसमै यम दीनकरे तिन हेर महा करुणारस आए ॥
बोध उपावन हेत सुनो नरनाहनके इह ग्रन्थ बनाए ॥ ६ ॥
भानुमरीचि सुनीर समं पुनि जा अज्ञान जगत्त बनायो ॥
वायु अकाश सुपावक नीर मही पुनि लोक सुतीन उपायो ॥
जाहिं पिखेरजुसापजिमें जगफेरसभोतिनमाहिं बिलायो ॥
उज्वलआतमबोध महाहमआनँदसों उरमाहिं धियायो ॥७॥
प्रत्यक्ज्योति सनातन जोजग व्यापरही सभमाहिं सुहाई ॥
रिदशांतविषेअतिभासतहै कृतसंयमकोजिहआनन्दताई ॥
विधुचूडनिरोधसुवायुभलेब्रह्मरन्ध्रहतेअतिऊँचचलाई ॥
दृगतीसरब्याजसुभालविषेशिवसंयमवंतसुआपदिखाई॥८॥

दोहा।

कीरतिवरमा नाम जिह, भूपति बडो रसाल ॥
ताहिसभामें विमलमति, आहि प्रधानगुपाल ॥ ९ ॥
वर्ष एक नाटक तहां, भयो सुसभामंझार ॥
जाको हेरसुज्ञानलहि, भये भूप भवपार ॥ १० ॥
याकों सुने जु कानमें, नीके चीत्तलगाइ ॥
आसुरसंपति दूर तज, वेगज्ञान बहु पाइ ॥ ११ ॥

सूत्रधार उवाच स्वपत्नी प्रति ॥

सवैया।

बहुबातनको कछु कामनहीं अब आयसुमोहिंगुपालदई ॥
सभभूपति जांसुकुटामणिके पदपंकज आरती आनिकई ॥

---

(१) अविद्या तत्कार्यमलरहितस्वप्रकाशरूप। (२) सेवते हैं अर्थात्उपासते हैं।
(३) अनृत जड दुःखरूपअहंकारादिकोंसे प्रतिकूलहोयकर अर्थात् सत्यज्ञानानन्दादिरूपकर जोप्रकाशे सो कहिये प्रत्यक् सोई होवै ज्योतिकहिये प्रकाशरूप सोकहिये प्रत्यक्ज्योति॥

प्रवलारिसमूहमहीपनके उरपाटनको नरसिंहमई ॥
वलभूपतिसिंधुधसीधरनी इन फेर वराहउधारलई ॥१२॥
दिगनारविलासनिकाननमें जिहकीरतिके श्रुतिटंक वनाए ॥
सभदिग्गजंकानसुतालवडेविधताहिंसफालनपौनउपाए ॥
तिहंसंगमिले अतिनाचत है भवताहिप्रताप सुज्वालवढाए ॥
तिन आप गुपाल सुएहकह्यो वहुनाटक भूपति देहु दिखाए १३

दोहा।

सहज सुह्रदस्वभाव यह, कीरतिवरमा भूप ॥
ताहित उदम थोकियो, दिग्जंयपरमअनूप ॥ १४ ॥
ताव्यापारअंत्रतभयो, परमानन्दहमार ॥
विविधविपयरसपरसकर, भये मनोजाविकार ॥ १५ ॥
ताव्यापारदूषितमनो, वासर दये विताय ॥
कृतकृत्यभये सुआजहम, भूपतिराजदिवाय ॥ १६ ॥

सवैया।

प्रसिद्ध अमातनभूपतिकेंसुविपक्षवलीनृप मारगिराए ॥
रक्षपालकरी सगली धरणी पुनि याहि किसींसह छत्र फिराये॥
सुपयोनिधिमेखलयाहधराशिर भूपनके इनराज ठराए ॥
रस शांत प्रयोग निवेदनैके जग आपविनोदकरे इमभाए॥१७॥

---

(१) दिग्गजोंके कानोंरूपीतालोंकर उत्पन्नभया जो वहुत पवन। (२) तिसपवनके साथ वृद्धिको प्राप्तहोयकर संसारमें प्रवृत्तहोरहाहै प्रतापरूपअग्निजिसका। (३) गोपाल। (४) शत्रु। (५) शांतरसहै प्रधानजिसमें एसाजोनाट्यानुकरण तिसके निवेदन कहिये जनावनेकरके ॥

कवित्त।

प्रबोधचन्द्रनाटकं सुआहिनटतोहिढिग,
कृष्णमिश्रआपजोईंपूरववनायोहै ॥
कीरतिवरमके समीप सोई नाटकरो,
हेरनको भूपतिको मन उमगायोहै ॥
सुनो सूत्रधार तुमप्रगटविचारकरो,
सभाहूसमेतरिदेकौतकमुहायोहै ॥
सुनिकै गुपालवाक सूत्रधारचारवाक,
नाटककेहेत निजनारिको बुलायोहै ॥ १८ ॥
नेपथ्यकीओर तिनहेरके पुकारकह्यो,
आर्येसुआउ इत तवी नटी आईहै ॥
आर्य्य सुकौन काज मोहिंको बुलायो आज,
कीजिये सुकाज अव वेर क्योंलगाईहै ॥
सूत्रधार ताहिको उचार पुनिएहु कह्यो,
आर्यें अजान नाहिं जाहितबुलाईहै ॥ १९ ॥
नाटकप्रवोधचन्द्र चन्द्रमासमान जग,
दीजिये दिखाइ यों गुपालमन आयोहै ॥
भूपति विपुलवल सोईतू अरण्यजान,
पावक प्रतापवनसंगते वढायोहै ॥
ताहिकी सुज्वाल तीन भौनमें विसाल वढी,
कीरतिको पुंज लोकतीनहूं में गायोहै ॥

(१) नाटककाआचार्य। (२) नेपथ्यनामकनातकाहै ॥

लीनेचन्द्रहास प्रतिकूलनृपनासकर,
जीतिके गुपालसुनरेशढिगआयोहै ॥
साँभरराज राजकोभिषेक जिन फेर जग ॥
कीरति वरमदेवभालमें करायोहै ॥ २० ॥

सवैया ।

रणरंगमहीपिसताशनिआ अवलौं नरमुंडनताल बजावैं ॥
अलिकैकचपिंगकपोललटीसुपिशाचनियांतिहनृत्यदिखावैं ॥
करिकुंभमृदंगनपौन वली धसि नाद अनेक सुपीठ सुनावैं॥
इहभाँति सुनो नटनीजगमें रणरंगमही अवलौं यशगावैं२१॥
रस शांत प्रसन्न विनोदनके हित हेनटनी सुगुपाल बुलाये ॥
अव याहि सभा वहुनाटकजो धर स्वांग भले हम देहिदिखाये
नटनी तव एह कह्यो भरताहित स्वांगन मानवलेहु मगाये ॥
इह आहि अचंभ वड़ो मनमें, सुन आर्य्य एहु गुपालसुभाये २२
निजप्राक्रमकै रणरंगमही जिन मंडल भूपनके सुभगाए ॥
पुनिकानलौंतानकठोरधनुंरणमंडलमें शरओघचलाए ॥
तिन वाणनकै अरिखेतविषे सुतुरंगनके वहु पुंज गिराये ॥
निज आयुधधारमहीधरसे गजकोटिनकोटि सुभूमिरुलाए२३
पैदलसैन सुक्षीरनिधी भुजमंदरघात सुव्याकुलकीनी ॥
श्रुतसैनपयोनिधिको मथिकेवलभार्वविजयलक्ष्मीजिनलीनी॥
जिनके रणकी मुनिबृंदसभै अवलौं जसकीरति गाहि नवीनी॥
रसशांतविपेतिनकीमतिआर्य्यमोहिकहोकिहभाँतिसुभीनी २४

(१) चक्रवर्तीराज । (२) गण्डस्थल । (३) कर्णसेनराजा ।
(४) समरविजयलक्ष्मी ॥

सूत्रधार उवाच स्वपत्नीमति—

दोहा।

ब्रह्मणज्योतिस्वभावते, समस्वरूप जगआहि ॥
कारणपाइ विकारभज, पुनि निज रूप समाहि ॥ २५ ॥
नृपकुल प्रलय कृशानुसम, चेदिपती[१] जगआहि ॥
चन्द्रवंशनृपराजको[२], दूरकियोपुनिताहि ॥ २६ ॥
चन्द्रवंशनृपराजाहित, उद्यम कियो गुपाल ॥
मार विरोधी थिरकियो, राज गुपाल रसाल ॥ २७ ॥

सवैया।

कल्पांत प्रभंजनक्षोभभयोसरितापतिज्यों सबशैलदबाए ॥
कृतकार्य फेर गहे थिरता निजवेलकी भीतरआय ठराए ॥
भगवंतके अंश[३]जयेनरजे सभ भूतनकेहित प्रेम वढाए ॥
नरमंडन ले अवतार मही कृतकार्यते रस शांति लगाए॥२८॥
भृगुनन्दनरामकोभामनीपेखसुवाहुजवारइकीसखपाए ॥
नृपशोणितनीर सुमांसवँसा[४]वहु पंकमई तटनी भटनाए ॥
नृपनारि कुमार सुवृद्धनलौं करुणाविन धारकुठार चलाए ॥
धरभार उतार उखार कुलं नृप शांति भये तपमाहि लगाए२९

दोहा।

परशुराम जिम आहि यह, कृतकार्य्य गोपाल ॥
परम शांतिनिष्ठा भजी, रसमें वडो रसाल ॥ ३० ॥

---

(१) चेदिदेशाधिपति राजाकर्णसेन। (२) कीर्तिवर्मा राजाके राज्यको। (३) अवतार स्वरूप। (४) अस्थिगतमांस ॥

जीत विवेक सुमोह जिम, बोधउदै जगकीन ॥
जीत करण बलराज तिम, कीरति वरमा दीन ॥ २१ ॥

अथ नेपथ्ये कलकला शब्द।

सवैया।

वीच कनातकेबात सुनीसुमनोजवलीयह काननमाहीं ॥
कोपभरे मुख एहुकही नटनीचसुबोलतयोंमुखमाहीं ॥
जीवतहीं हमरे जगमें तुम मोहकि हार कहें जनमाहीं ॥
पापि शिलूषविवेकहिकी जड मूल उखारदयो भवमाहीं॥२२॥
सुनबातशिलूषडरयो मनमें पुनि संभ्रमहेर सुनारि अलायो॥
रतिकंठभुजा घनपीनकुचालहि संग रोमांच अनंग सुआयो॥
जगमादन सोभ अपार वनी मदघूमतनयन चले अलसायो॥
अब भागचले इह ठौरहिते सुनिकै ममवाकमनोषुनशायो २३
इमभाख तजीरंगभूमितिनो तव आय मनोज प्रवेशकयो ॥
अलिकै कच नील कपोल लटी रतिकंठविषे हँस हाथदयो ॥
दृगकंज चढाइ उठाइभुजा रतिनाथ महा उर क्रोध छयो ॥
भृत्ताऽधम पापि सुजीवतमें रति नाहि विवेक सुकौनभयो २४
तवलौं मनमाहिं विवेक रहे सभ आगमते उपजो इह जोई॥
जबलौं नाहिं नीलसरोरुहिसें दृगनारिकटाक्षलगे सरकोई ॥
नृप जीत तजे नवखंडमही घरनारि भजें कर जोर सुदोई॥
चतुराननलौं जगमाहिं पिखे दृगनारि अजीत नहीं भटहोई२५

(१) नटाधम ॥

धौल जहाँ गृह ऊचवने गजदंतनमंच सुसेजसवारी ॥
मध्यविराजत चंद्रकलासम वारिजनैन सुनूतननारी ॥
भूषन चंपकहार घने तनुचन्दन कुंकुमगंध उदारी ॥
चंदउदै तम दूरभये निशिमाहिं खिरी सुमनोजकी वारी॥३६॥
इह आयुध मोहि जंयंत सदा इन धारमलेजगआहिवलीको ॥
इन होवत कौन विवेक अहै पुनि बोध उदै नहहोत कलीको॥
जनऔरनकीजगकौन कथा धृतसंयम जोजन जाइ गलीको ॥
दृगकंज फिराय पिखे युवती चितयोंतरफै जन मीनथलीको ३७

रति रुवाच।

दोहा।

आर्यपुत्र सुअतिवली, भाषैं मुनी अनेक ॥
महामोहभूपालको, याजग शत्रु विवेक ॥ ३८ ॥

काम उवाच।

सवैया।

तवनारि सुभावते संकभई[१] प्रतिपक्षनते हमनाहिंडरें ॥
पिखयद्यपिफूलशरासन औसरमैं करभीतरआपधरें ॥
जन तदपि आयसुमोहिं उलंघ मुहूरत धीरज नाहिं धरें ॥
सुन वामउरू सुरदैत्यसभै जगभीतरहै वस मोहि करें॥ ३९॥

दोहा।

जानत काम ननारि कछु, शृङ्गीऋपिवन माहिं ॥
मोसरचीत्तभ्रमाइयो, गयोभूपगृहमाहिं ॥ ४० ॥

(१) नयका हेतु। (२) शत्रुओंसे ॥

ताकी कथा संक्षेपते, कहोंसुनो चितलाइ ॥
वामउरू संसामिटे, तोहिं निखल डरजाइ ॥ ४१ ॥

चौपाई ।

लोमपाद इक भूपति भारा । जाकोयश सबभौन मँझारा ॥
दशरथको वहु मीत कहीजे । जाको हेर अमंगल छीजे ॥४२॥
ताके देशको वहु विस्तारा । वर्षा होइ न ताहि मझारा ॥
ताकी प्रजा दुखी सभऐसी । तपत अल्पजल मछली जैसी४३॥
विप्रजोतिकी भूप वुलाए । वर्षा होइ सुकौन उपाए ॥
विप्रन वहुविधिकीनविचारा । भूपतिको इह भाँति उचारा ॥४४॥
शृङ्गीऋपिवन भीतर जोई । आइ इहाँ तव वर्षा होई ॥
वहनिरपेक्ष महामुनिज्ञानी । आवै किहप्रकार रजधानी॥ ४५ ॥
लेन न ताको कोई जावै । शापअग्निते सभ डर पावै ॥
तव तिन वारवधू सवुलाई । दानमानकर पास बिठाई ॥ ४६ ॥
शृङ्गीऋपिवनजाहि अगारा । ताको लियावो नगर मझारा ॥
सुनकर बारवधू अकुलानी । शाप अग्निते अति डरपानी॥४७॥
पर भूपतिकी आयसु जोई । मेटि न सके कदाचित सोई ॥
तव तिन एक उपायसुकीनो । नौकावांध स्थंडलकीनो ॥ ४८ ॥
तामै रंभापुंज जराए । लाडूकरणपूरफललाए ॥
कहूं जलेवी कहूं अपूपा । कहूं सुबूंदी रची अनूपा ॥ ४९ ॥

---

(१) ज्योतिषी । (२) मृत्तिकाकाथडा । (३) घेवर ॥

दोहा।

क्रिंतम बेल तामै रची, फूल पात बहु भाइ ॥
लाचीदाणेकी तहां, रची सुदाख बनाइ ॥ ५० ॥

चौपाई।

याविधधारअडंबर बाला। गई तहांजहँ विपिन विशाला ॥
मुनिआश्रमते किंचित दूरा। नौका थापी नीर गरूरा ॥५१ ॥
षोडशबरसनकी बहु बाला। गईं तहां जहँ मनी विसाला ॥
लाडू करणपूर फल जेते। पात पलाश धरे सभतेते ॥ ५२॥
शृङ्गीऋषि तह नैन मिलाए। ध्याननिष्ठ मुखवेद अलाए ॥
पगनूपुरधुनि सनी सुजबहीं। नैन उघारे मुनिवर तबहीं ॥५३॥
मुनि उर जानवन्दना धारी। अरघपादहित लियायो वारी ॥
गणिकातब मख एह बखाने। हम ऋषिवर नाहिं छुहे सआने ५४
थाफो नीर नचरण पखारो। हमरे तपवनफल मख डारो ॥
करणपूर अरु लाडूखाए। शृङ्गीऋषिके मनविगसाए॥५५॥
खाइ जिलेबी लाचीदाण। अहोस्वाद मनिमखोबखाने ॥
मिलकर गणिकागायन करें। मुनिवर जाने वेद उच्चरें॥ ५६ ॥
तुमरे मुखसरोज मकरंदा। वेदधुनी उर जने अनंदा ॥
पद क्रम जटाअपूर्वथारी। आप पढाई जोमुखचारी ॥५७॥
याविधिनिरखेतामुखओरा। ज्योंनिशचिते सुचन्दचकोरा ॥
अहो हमारे भाग सुनए। यह मुनि ब्रह्मलोकते अए॥५८॥

(१) करीहुई। (२) पदक्रमजटा वैदिक मन्त्रोंके उच्चारण विशेषका नामहै ॥

याके बलकल ऐसे सोहै। ताडितपुंज जनमें मनमोहै ॥
बनफलमिष्टमधुररघुनिवेदा ।मनकोनिखिलमिटावैखेदा॥५९॥
सुंदर शीशजटा अतिकारी। मनोविरंचि स्वहाथसँवारी ॥
तपको तेज भालमें दमकै। किरणासहितमनोशशिचमकै६०
हेमजनेऊ याके अंगा। स्वर्गफूल सोभे सरबंगा ॥
अहोपिताफलहित बनगए । याके दरशन ताहिं न भए॥६१॥
ऋषिआगमनऔसरकोजान। वारबधू तह कियो पयान ॥
वहुआईनौकाकेपाही ।मुनिवर आयोआश्रममाही॥६२॥
शृङ्गीऋषि सुतआइ निहारा। रंचककरे न वेद उचारा ॥
अग्निहोत्रकी अग्नि सुजोई। नाहि जगाई निशिकोसोई॥६३॥
वारबधू जिहपंथ पधारी। दृष्टि तहाँ शृङ्गीऋषि धारी ॥
पूछ्यो पिता कहां मति गई। पढे नवेद नहीं कृतकई ॥ ६४ ॥
शृङ्गीऋषि तब बैन उचारे। पिताहुते कछु भाग हमारे ॥
ब्रह्मलोकते मुनिवर आए। नाहिसमंश्रूमुख निरमाए ॥६५॥
ताको रूप निहाऱ्यो जोई। अवलौ चीत चितारों सोई ॥
कोमल बलकल तनमेंसोहैं। दोदो शृंग उरन मन मोहैं ६६ ॥
शीशजटाकोमलअतिश्यामा। भाल तिलक हाटकढिगदामा ॥
नाककरणमें छिद्र सुकीने। स्वर्गफूल तामें गुहिदीने ॥६७॥
नयनसरोज दयारसभीने। सिच सुधा श्रम करे सुखीने ॥
मेरीओर कृपाकर निरखे। प्रेमडोर मानो मनकरखे ॥ ६८ ॥
याविधि वेद सुकीन उचारा। सुनिकर हऱ्यो सुचीत्त हमारा ॥
ऐसे शृङ्गीऋषिहिअलायो। पितालख्योअबलाभरमायो ६९

(१) मुखके वाल ॥

शृङ्गीऋषि बहुभाँति डराए। हेसुत ऋषि नाहिं राक्षसआए॥
ताके गीत सुनी नहिं काना। नातर तेरे हरहैं प्राना॥ ७०॥
याविधि मुनिवर बहुत डराए। पर शृङ्गी बहुरूप ध्याए॥
मुनिवर भये प्रातपुनिकाल गयो जबैबहुविपिनविशाल॥७१
तबपुनिगणिकाझुंडसुआयो। शृङ्गीऋषिपिखमोलझुकायो॥
तुम अपने तप विपिनमझारी। मोहि लेचालोकरुणाधारी७२॥
तब संगचल्यो मुनिवर ऐसे। प्राणनसंग जीव जग जैसे॥
नैनकटाक्ष सुछविहिकपोला। निरखभयोऋषिकोमनलोला७३
ताकी मंदगती झुनकारा। सुनिसुनिऋषिमनभजेविकारा॥
नौकाभीतर बैठो जबही। पहुँतो लोमपादपुरतबही॥७४॥
मुनिवर नगर जबै पगधारा। बरषा भई सुतहाँ अपारा॥
यहविधि तपको जाहि प्रभाऊ। अबलाऽधीनभयो मुनिराऊ ७५
शांता भूपतिदुहिता जोई। ताहि वरी पुर भीतर सोई॥
याकी कथा बहुतविस्तारा। कहांलगे मम करोंउचारा॥७६॥

दोहा।

मानवकी गनती कहां, देवनमैं प्रधान॥
त्यागे धर्म क्षणेकमें, रंच लगावो बान॥ ७७॥

सवैया।

गौतमनारि सुजारसुरेश्वरजाइ भयो सर मोहिचलायो॥
वेदपठे चतुरानन जो रतिके हितसो दुहिता प्रति धायो॥

(१) उपपति। (२) आत्मतनया शतरूपा॥

इंदु भंजीगुरुकी अवला वुद्धसो सुतताहिके बीच उपायो ॥
कौन अपंथन पांउधरे जगमोसरजाहिको चीत भ्रमायो ७८॥

दोहा।

याविधिके अवलाहने, तपी वडे वलवान ॥
गुलावसिंह वैरागको, करें मूढ भिमान ॥ ७९ ॥

रति रुवाच ॥

सवैया।

मत आर्य यद्यपि तूंभुजमें जगजीतनको वल आपधरें ॥
जग होइसहायक जाहिवली पुनितां अरिते बलवंत डरें ॥
सुनिये यमंआदिक आठ वजीरविवेकसहायक वेदररें ॥
वहु जंग उपाय करें सुनियो इहते उरमें हम नीतडरें ॥ ८० ॥

काम उवाच ॥

सवैया।

भामिनि रायविवेकहिकयमआदिक आठ अमात सुनाये ॥
तेरणरंगमहीपहिले हमने सवठौरनठौर दवाए ॥
कौन अहै जगभीतरसो हम जीवत ताहिको नाम अलाये ॥
वामउरू तज चिंतसदा तुमक्योंमनमै अरिते डरपाये॥८१॥

दोहा।

कोपं आगारीरहे जो, कौन अहिंसानार ॥
ब्रह्मंचर्यको मैं सुनो, क्षणमहि डारों मार ॥ ८२ ॥

---

(१) गुरु बृहस्पतिकी स्त्रीको चन्द्रमा सेवताभया। (२) यमनियमाऽऽसन प्राणायामप्रत्याहार धारणा ध्यानसमाधि। (३) क्रोध। (४) पर प्राणिवयो-गानुकूल व्यापारका नाम हिंसा ताका अभाव अहिंसा। (५) आठप्रकारके मैथुनका त्याग ब्रह्मचर्य्यहै ॥

लोभ[1] जवै करमै धरे, चन्द्रहास वलधार॥
सत्य[2] असतेय[3] अपरिग्रह[4], भामनि मुणनिहार॥ ८३॥

सवैया।

यमनेमसुआसनप्राणयमं प्रत्याहारवलीजगध्यानअलाये॥
धारणा और समाधिसुनो चितहोइ इकाग्रतौ उपजाये॥
चितभीतर रंच विकारकरौं इनको जडमूल सुदेहु उठाये॥
इन जीतनहेतु रची अवला यमनेम तवै हमरे वशआए॥८४॥
दूरविलोकन नारिनिको अरु ताहि संभापन दूर रहे॥
हास विलास सुकेलि[5] आलिंगन नाहि इकंत सुवात कहे॥
जन संयमवंत कहावतजे तजसौध[6]तपोवन जाइवहे॥
चित्तमाहि चितारत जो युवती क्षणमैं मनताहि विकारगहे॥८५॥
मोह अमातसुमात्सर[7]मद दंभ तथा पुन लोभ अलाए॥
कामयमादि वजीर लये वहिकान इकंत सुमंत्रदिढाए॥
मोहमहीप अधर्म वजीर यमादिक गोप लगे तिनपाए॥
जो यमनेम करे जगमैं, हरिके हित नाहि सुलोक दिखाए॥८६॥

रति रुवाच॥

दोहा।

शमदम और विवेकलौ, कामक्रोधमदमान॥
मैं सुनियो निजकानमैं, एको जनम अस्थान॥ ८७॥

---

(१) पर द्रव्यके हरणकी इच्छा का नाम लोभ है। (२) यथार्थभाषण का नाम सत्य है। (३) चोरीके अभावका नाम अस्तेयहै। (४) खोटे प्रतिग्रहके अभावका नाम अपरिग्रह है। (५) द्यूतादिक्रीडा। (६) मन्दर। (७) पर गुणोंमे ईर्षा और मद कहिये मनका गर्व॥

काम उवाच ॥

सवैया।

उत्पत्तिकोस्थानसएकअहे मनसोजगभीतर तातअलाया ॥
हम हैं पुन भ्रात विमात सुनो वहुगोप प्रकार बने अबगाया॥
सुन पूर्व ईश्वर संग कीयो, निजनारिबखानत ताहिं सुमाया
जिनते उत्पत्ति भई हमरी मननाम वही सुत ताहि उपाया ८८
मन तीनहु लोकसु आप रचे पुन ताहि विषे कुल दोइ उपाई॥
मन एक प्रवृत्ति कहे पतिनी सुनिवृत्ति तथा जग दूसरि गाई॥
मोह प्रधान प्रवृत्ति रची कुल तीनहु लोकनमाहिं फिलाई ॥
सुविवेकप्रधान निवृत्तिजनीकुलसो बिरलीजगमाहि चलाई८९

रति रुवाच ॥

सवैया।

सुत आय जो इहभांति अहे जगभीतर एक सुतातत्तुमारा ॥
किह कारण वैरभयो तुमरो धुजमीनकरो ममएहु उचारा ॥
तिह भ्रातनमें इहभात सुवैरन मोहि सुन्यो यह कानमझारा॥
कविसिंहगुलाव कहे रति नाहसुनो रतिवैरको कारणभारा९०॥

काम उवाच ॥

सवैया।

जे इक आमिषते निपजे तिन वैर प्रसिद्ध कऱ्यो जगमाही ॥
भूमिनिमित्त लरे कुरुपांडव भूप खपे जिनके रणमाही ॥

(१) दूसरी माता ॥

भारत खंडकी नूतन नारि भई विधवा जिन संगरमाही ॥
होवतहीं यह बात आई कछु नाहिं भई सुनई भवमाहीं॥९१॥
हमरे मनतात सुपूर्वएरतितीनहुलोकसुआप वनाए ॥
हमहैं अतिवल्लभ तात हिके इहते हम तीनहुलोक दवाए ॥
शम औ दम और विवेक पिता वलहीन पिखे वनवास पठाए॥
अवते अघवंत उपायकरें पितभ्रातनमूलसु देहु उठाए ॥९२॥

रति रुवाच ॥

सवैया।

सुतआर्यक्यों पुनि पापइसो मति हीनकरेंवहुसंगतुमारे ॥
उर द्वेष बध्यो तिनके अतिहीं इहभांति चहें जगपापकरारे॥
अथवा इह कौनउपाय सुनो धुजमीन तुमे मन माहि विचारे ॥
इहभांति सुने रतिवाकजवै तव बोलउठे रतिप्राणपियारे॥९३॥

काम उवाच ॥

दोहा।

भामिनि गूढ सुवीजइक, है पुन कह्यो नजाइ ॥

रति रुवाच ॥

आर्यसुतक्यों नाकहैं, मोको तूं प्रगटाइ ॥ ९४ ॥

काम उवाच ॥

दोहा।

रति तूं नारिसुभावते, भीरू अतिडरपाइ ॥
वैपापी दारुणकर्म, तोपै कह्यो नजाइ ॥ ९५ ॥

रति रुवाच ॥

दोहा।

आर्यसुत सोकौन वहु, कैसोकरम कमाइः॥
विनभाखे थल मीनसम, मेरो चित्त तरफाइ ॥ ९६ ॥

काम उवाच ॥

सवैया।

भामनि नाहिडरें उरमैं हतं आशविवेक सुआश ठराई॥
याकुलमैं निसकालसमाविद्योजिह नाम सुराक्षसी काई ॥
लेवहिगी अवतार सही उरभीतर नाहिं दया कछु राई ॥
होवतसत्य भविष्यकथा जनंकी श्रुति याजग एहु अलाई९७

रति रुवाच ॥

दोहा।

हा धिग हमरे कुलविषे, पिसताशीसुमहान॥
उपजेगी उर कंपहै, चलदलपत्रसमान ॥ ९८ ॥

काम उवाच ॥

दोहा।

भामनि क्यों उर कंपहै, लोककहें यह बात ॥
जनमु राक्षसी होइगो, निश्चैनहिं विख्यत ॥ ९९ ॥

रति रुवाच ॥

दोहा।

नाथ बखानो एहु तुम, जो उपजे पुन सोइ ॥
याजगमैं अवतारलै, कामकरेगीकोइ ॥ १०० ॥

---

(१) नष्ट होवे आशा जिसकी (२) ब्रह्मसाक्षात्कार औ क्रूर कर्मके करणेते राक्षसी कहीहै (३) पुरुषोंकी वार्त्तहै निश्चय नही ॥

काम उवाच ॥

सवैया।

भामिनियों सुनिये जगमैं इहवाकअहै विधिब्रह्म अलाया ॥
पुंस असंगकहें जिहको तिहनारि अहे जगभीतर माया ॥
नाहिं छुहे तिह संग कवी मनें वल्लभ ताहिंविषे सुत जाया॥
तां उपरंत सुनो गजगामनि नाथइहे पुन लोक वनाया१०१॥

दोहा।

कन्या ताते होइगी, विद्यानाम कहाइ ॥
तातमात पुन भ्रातकुल, लए सकल वहुखाइ ॥ १०२॥

कवि रुवाच ॥

दोहा।

त्रास कंप रतिको भयो, बोली अतिभय आहि ॥
भरताके गलसों मिली, आर्य्यसुत परिपाहि ॥ १०३ ॥

सवैया।

रतिसंगमकोसुखआहिजोईमुखस्वाँगतिकैपुनकामादिखाए ॥
तनमाहि मनोजरुमंचभये युगतारेक नैननकै तरलाए ॥
घनपीनपयोधर नारि मिले शिवके रिपुतौ मनमें हरषाए ॥
मणिगुंजत कंकण हाथविषे रतिकंठभुजामनमें विगसाए१०४॥

---

(१) असङ्गोह्य पुरुषः । इतिश्रुतेः । (२) शंकाः—पुरुषके साथ संवन्ध रहित हुई, माया मनको कैसे उत्पन्न करेगी । समाधानः—पुरुषके साथ संवंध रहित हुई भी माया मनको उत्पन्न करे है दृष्टान्तः—जैसे चुम्बकपाषाणके साथ लोहशिलाकाका संवन्ध नहीं भी है तौ भी चुम्बककी क्रियाके पीछे क्रिया करे है यह लोकमें प्रसिद्धहै तैसे पुरुषके साथ संबन्ध रहित हुई भी माया इच्छामात्रसैं मनको उत्पन्न करेहै—काहैतै (अघटितघटनापटीयसीमाया) है याते मायामें सभकछु बन सके है । (३) मनने। (४) मनमें प्राप्त (५) नयनोंके दो तारे श्यामतरकाहिये अति चंचल लगाय दीये ॥

काम उवाच ॥

सवैया।

तव संगममोद जने मनमैं, अरुमोहमहा उरमैं उपजाए ॥
इमभाष मनोज प्रमोदवढे रतिको दृढ कंठ सुफेर लगाए ॥
हम जीवत कौन वली जगमें पुन आत्मविद्याजो उपजाए ॥
जग कौन विवेककोनाउलएरतिभीरुकहोतुमक्योंडरपाए १०५

रति रुवाच ॥

दोहा।

विद्याकन्या राक्षसी, ताउत्पत्ति जोइ ॥
तुमरे वैरी जगतमें, किहविधि चाहै सोइ ॥ १०६ ॥

काम उवाच ॥

सवैया।

सादुहिता श्रुतिनारिविषे, खलराय विवेकप्रिये उपजाए ॥
संगप्रबोध शशी पुन भ्रात, सुहंसगते तिहमाहि उपाए ॥
ताउत्पत्तिविषे पातिनी सुशमादिक आपसहाइक आए ॥
ते उपवासकरें तपसाधृत उद्यमतीरथ देव मनाए ॥ १०७ ॥

रति रुवाच ॥

दोहा।

आत्मनाशक विद्या, ता उत्पत्ति जोइ ॥
काहिसराहै दुष्टमति, शंका पापन होइ ॥ १०८ ॥

---

(१) विषयांतरके विस्मरणको उत्पन्नकरताहै। (२) अनावृत ब्रह्माकारान्त:-करणवृत्तिरूपाकन्यानाम विद्या। (३) अनावृतब्रह्माकारान्तःकरणवृत्त्युपहितचैतन्यरूप-प्रबोधचन्द्रमा भ्राता ॥

काम उवाच ॥

सवैया ।

रतिजे कुलनाश प्रवृत्तिभये, वहुपापकरें नहिं पापडराए ॥
मुख नीतं मलीन रहेतिनको, उपजे निजतात सुआतमचाए ॥
बलि पावकधूम सुमेघभयो फिर धूंमधुजंहन आप खपाए ॥
कुलकंटक आहिविवेक सुनोनितपापकरेनहिं रंच लजाए १०९

(अथ नेपथ्ये कलकलाशब्द)

विवेक उवाच ॥

सवैया ।

आहिदुरातमकामकलंक सुतूंधरमातम आप अलाए ॥
तेअघवंत सुपापकरें इम भाष अघी हमको सुठराए ॥
नाहिलयो मन तातमतो जिम मूढ मनोज सुनो चितलाए ॥
तातभयो सुतमोह अधीन सुमारग वेदको दूर भुलाए॥ ११०॥
कार्य औ अकार्यको गुरु जोन पिखे उरमें गरवाए ॥
वेदविरुद्ध सुपंथविषे मनके मदकै जब पांउ टिकाए ॥
ताहिं त्याग सुवेद कहे मनुस्मृतिमें पुन एहुबताए ॥
बीच पुरानन व्यासकहे ऋषि पूर्वले पुन एहु अलाए॥ १११॥

दोहा ।

पिता गुरू मत त्यागकर, बडभागी प्रहलाद ॥
मुक्तिपाइ बन्धनतजे, हरिकेसेवसुपाद ॥ ११२ ॥

(१) अग्नि । (२) मन । (३) श्लोक—गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याऽकार्यमजानतः । उत्पथ प्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते ॥ अर्थयहः—जोगुरु अहंकारादिकदोषोंकरकै उन्मत्तभावकूं प्राप्तभयाहै तथा जो शास्त्रकरणेयोग्य अर्थकूं तथा शास्त्रनिषिद्ध अकरणेयोग्य अर्थकूं नाणतानहीं तथा शास्त्रनिषिद्ध मार्गमें प्रवृत्तहोवैहै ऐसे गुरुका शिष्यने परित्याग करणा ॥

कवित्त ।

तात जो हमारो सुहंकारके अधीन भयो,
कार्य अकार्य न रंचक विचारियो ॥
जगतको पतिजो परमात्मासु तात निज,
ताहिको सुवाध जगश्रृंखलमें डारियो ॥
मोहमदमान निसदिन सनमानकर,
छोड़िनो सुदूरवंध दृढ विसतारियो ॥
ऐसो मन तात जोईहतएनदोषकोई,
कर्‍योहमत्यागनाहिं ताहिमतो धारियो ॥ ११३ ॥

सवैया ।

इहऔसर कामविलोकनकै रतिकेप्रतिएहु सुवाकअलायो ॥
हमरे कुलमें सुप्रधानवडो मति संगिमिल्यो सुविवेक हिआयो॥
गजगामनि आवतहै इतऔर चले मृगके पतिज्योंहुलसायो ॥
शिवज्योंतुहिनाचलकीतन्या, मतिसंगमिले इहभांतिसुहायो ॥

दोहा ।

रागादिक जिन वसकिये, कीरतिवंत उदार ॥
उर अतिकोप्यो मानधन, मनोनिरादर धार ॥ ११५ ॥

सवैया ।

तन दूवर एहुविवेक पिखो रतिचित्त कठोरमहादुःखदाई ॥
कलंषीमतिमाहि सुयों लसकै तुहिनाचलज्यों शशि देतदिखाई
इहकारणते हम योग्यनहीं इहठौर निवासचले सुपलाई ॥
रतिसंग मनोज सुभागगए, मतिसंग विवेक बरे तिहआई ११६

(१) रागादिरूपकालस ॥

विवेकभूपति रुवाच ॥

दोहा।

सुनेप्यारी कानतव, कामवडेमदवैन ॥
हमैवखाने पापकृत, दुष्टात्मयहमैन ॥ ११७ ॥

मति रुवाच ॥

दोहा।

आर्यसुतनिजदोषको, जानतनाहिं सुकोइ ॥
दोषवखाने औरको, मूढ जगतके लोइ ॥ ११८ ॥

राजोवाच ॥

सवैया।

चितआनंदनीतनिरंजनजो जगनायकजाहिसुआगमगाए ॥
मदकामहंकारपरायणने तिनको जगभीतर वन्धन पाए ॥
अतिदीनदशा तिनकी सुकरीपुन सुकृतवंतसु आप कहाए ॥
हम ताहि छुडावनमाहि लगे अघवंत अहो खल मोहि अलाए ॥

मति रुवाच ॥

सवैया।

सुत आर्य्य जो परमात्महे सहजानंद सुंदरवेद उचारे ॥
बहुनित्यप्रकाश महारविसों सुत्रैभौननमाहि सुजाहि प्रचारे ॥
इहभांति सुनोपरमेश्वरमैं किहभांति इने तिनवन्धन डारे ॥
दुःखसिंधुपरात्मडारदयो किम ताहितजे गुण आपउदारे १२०.

राजोवाच ॥

सवैया।

अतिधैर्यवंत उदारवडो उरसत्य सदा गुणसिंधु सुगाए ॥
स्वाच्छसदा उरनीतवसे सुमहालक्ष्मी सिर छत्र झुलाए ॥

मति धैर्य शील तजे क्षणमें सुनभामिनि नारि न जाहिभ्रमायो॥
अब औरकी बात कहाकहिये निजनारिपरात्म आप भुलायो॥

मति रुवाच ॥

सवैया ।

सुतआर्य्य जो तमहोइ बडोरविकोनहि छादसकै पुन सोई ॥
तिम आत्म नित्यप्रकाश महा जिनकै सम दूसर और न कोई॥
सुखसागर नीत उजागरहै अज्ञान कहो किहभांति सुहोई ॥
अब दूरकरो करुणाकरकै इहशंक बडी उरअंतर पोई ॥१२२॥

राजोवाच ॥

अनंगशेखरछन्द ।

बिनाविचार सिद्धए प्रसिद्धपारयोषिता,
समान नाममायाविलासिनीबखानिए ॥
मणिसफाटकंयथासुदेवऊजलोमृषा,
सुहावभावकैतथाप्रवंचनासुठानिए ॥
ताहिके सुसंगते असंगताजु देवकी,
स्वरूपसिद्ध नित्यहै मनाक नाहिं हानिए ॥
तथापि गाढसंगके प्रसंगविक्रिया भई,
छुटीसुधीरता तबै अधीरता सुजानिए ॥ १२३ ॥

मति रुवाच ॥

दोहा ।

कारण कौन सुभाषिए, जाकर करे विकार ॥
पुरुषपुरातनसोंवधू, जाको चरित अपार ॥ १२४ ॥

(१) नाम अनिर्वचनीयहै। (२) क्रीडादिविलासोंकेकरनेवाली। (३) मिथ्याहावभावकरके असत्यपदार्थोंको सत्यरूपदिखावतीहुयी पुरुषोको वंचनकरती (ठगती) है। (४) अत्यत सगसे विकार प्राप्तभया ॥

राजोवाच ॥

दोहा।

माया कारण काजको, चाहितनाहिंसुकोइ ॥
नारी जान पिशाचनी, यही सुभाव सुहोइ ॥ १२५ ॥

सवैया।

मोहतहै कवहूं अवला मदसोंसु विडंवन फेरकरे ॥
कवहूं पुन ताडत है अवला कवहूं हँसके पुन अंकभरे ॥
सुविखादकरे कवहूं कवहूं अतिदीन मनोरिद माहिवरे ॥
दृगवामकटाक्षनकै अवला कहुकौनहकौननचीतहरे ॥१२६॥

दोहा।

है कछुकारण कौन पति, कहों सुनों अव सोइ ॥
दुराचार इन चित वियो, कऱ्यो विचार सुकोइ॥१२७॥

मायोवाच ॥

सवैया।

अव जोवन मोहि विलाइगयो पुन देव पुरातनहै जरठायो ॥
अव मोहि विषेरस आहिकहारस वेसुखजोवनमैं नरसायो ॥
अव और उपाय वने नकछू मन पूत वने अव राज दिवायो॥
इहमातमतो सुविचारमनेमन पूत तवैनिज तात मिलायो१२८
नवद्वारनके पुर ताहि रचे मन आप सुनो तिनवीच वसाए ॥
इकरूपहुतो परमात्मजो वहुभांतिनकै पुरमाहि फसाए ॥
सुकरे मनकार्य्य आपजितपरमात्मके पुनमाहि ठराए ॥
सुजपाकुसमंमणिमाहियथाहनश्वेतगुणंगुणलालदिखाए१२९

(१) कार्य। (२) इस प्रकार मनने माताके मतको विचारकर तथा मनरूपपुत्र तात परमेश्वरके साथ अभेद संवन्धवाला होकर ॥

मति रुवाच ॥

दोहा।

आर्य्यसुत यालोकमैं, जैसी मात प्रवीन ॥
ताको सुत तैसो भयो, कहो देव कतकीन ॥ १२० ॥

राजोवाच ॥

सवैया।

तवचींतको पूत हंकार वडो नंपिता परमात्मकोजगगायो ॥
अतितोतलवैनगयो ढिगजो हसके परमात्म कंठ लगायो ॥
तव भूलगयो परमात्म आप भवमोहभयो इम आप अलायो ॥
इह तात इहै ममुमात अहै इहखेत इहे सुकलित्र सुहायो १२१॥
यहपुत्र सुमित्र अरात वडो पुन याव सुधा वलं आहि हमारे॥
गज अश्वपशू यह कोशं अहे पुनएहुसुह्रदसुवन्धु पियारे ॥
चितको फुरणों जिहभांति भयो तिमदेव परात्म आपन धारे॥
अज्ञान मई बहु नींद भई स्वप्ना बहु भांतिन भांति निहारे १२२

मति रुवाच ॥

दोहा।

आर्य्यसुत परमेश्वर, दीरघनींद विकार ॥
बोधं जनम किह भांति पुन, होवे मोहि उचार ॥१२३॥

कवि रुवाच ॥

दोहा।

सुनत विवेकमहीपको, लाज भई उरभार ॥
कीन अधोमुख तासमैं, धरणीओर निहार ॥ १२४ ॥

(१) मन। (२) पौत्रा। (३) सेना। (४) खजाना। (५) प्रबोध ॥

मति रुवाच ॥

दोहा ।

आर्य्यसुत किहहेतते, गुरुतरलज्जातोहि ॥
नम्रसुकंधर तेभई, भाषो कारण मोहि ॥ १२५ ॥

राजोवाच ॥

दोहा ।

नारिनको वहु ईर्षा, होवत जगतमझार ॥
साऽपराध जन आप पिख, कहों न तोहि उचार ॥ १२६ ॥

मति रुवाच ॥

दोहा ।

रसप्रवृत्तिकै धर्महित, करे कछू पति प्राण ॥
वहुऔरे जगयोषिता, करे काज तिहहान ॥ १२७ ॥

राजोवाच ॥

दोहा ।

मति प्यारी इक औरहै, मानन मेरी नार ॥
उपनिषत सुनामबखानिए, सुंदररूपउदार ॥ १२८ ॥

चौपाई ।

वहुदिनकी विछरीहै प्यारी । मोहि असूया दुःख उर भारी ॥
शमदम जो अनुकूलह होई । तौउपनिषत संग मम होई ॥ १२९ ॥
हेमति तूं जगविषे निवारे । एक महूरत मोन सुधारे ॥
जाग्रत स्वप्न सुखोपतविलाई । मैं प्रवोधसुत लेहु उपाई ॥ १४० ॥

(१) दूसरीस्त्रीके संगसें अपनेको अपराधसहित देखकर । (२) पतिके मनवांछितकार्य ।
(३) स्त्रियोंको ईर्षाकृत जोकोपहै ताका नाम मान है तिसमानवालीका नाम माननहै ॥

दोहा।

उपजतही प्रबोधसुत, करे वन्ध सभहान ॥
वन्धनमुक्ति विराजही, परमात्म भगवान ॥ १४१ ॥

सवैया।

सुत आर्य्यजो प्रभको दृढबंधनहैं दृढग्रन्थि महादुःखदाई ॥
ताअवला तव संगमते सुतबोधभये वहु वन्ध मिटाई ॥
पति नीतभजो तिनसंगमको अव वेगिमिलो किम वेर लगाई ॥
सुतआर्य्यनीतरमोतिनसोंममचीतप्रसन्नभयोहुलसाई॥१४२॥

रानोवाच ॥

सवैया।

भामनि जो यह वातिभई तव सिद्धमनोरथआज हमारे॥
हैजगआदि सुएक विभू परमात्मजा श्रुतिपुंज उचारे॥
ताहि करे वहुखंडजिनोपुरदेहनमे वहु बन्धन डारे ॥
चिदईशदयोमृतकोपदहाअवतेईवनेजगभीतरमारे ॥१४३॥

कवित्त।

ब्रह्मकेजोंभेदकहैंखेदकअनेकविधि,
प्राणंअंतप्राश्चित ताहि करवाइये ॥
विद्यासरूप प्राश्चितयों अनूपहोइ,
जीवब्रह्म एकता सु तवी मोक्ष गाइये ॥
कार्यके सिद्धहित शांति औ दमादिजेई,
ताहताह तीरथमै बेगसु पठाइये ॥

(१) प्राणोंका नाशरूप। (२) ब्रह्माद्वैतसाक्षात्काररूप। (३) प्रबोधकी उत्पत्तिरूप॥

ऐसेमतिमान माति पांति तौवखानकर,
गएभौनऔरपिखजाहिसुखपाइये ॥ १४४ ॥

सवैया।

मतिसंग विवेक विचारकियो जगभीतरजोजनकोसुखदाई ॥
जिहसों सभजीवकी बन्धमिटे परमात्मसंग सुवेग मिलाई ॥
तपसातटतीरथजोगभजे उपजे सुतबोध वडो जसदाई ॥
कविसिंहगुलाबसु एहकथा प्रथमै यह अंक निरंतरगाई १४५॥

दोहा।

गुलाबसिंह मतिपति मतो, जानमोहभूपाल ॥
दंभकलादिक पठेगो, तीरथहनन विसाल ॥ १४६ ॥

इति श्रीमन्मानसिंहचरणशिक्षितगुलाबसिंहविरचिते प्रबोधचन्द्रोदयनाटके प्रथमोऽङ्कः समाप्तः ॥ १ ॥

इति श्रीमदुदासीनवर्य्य परमानंद शिष्य गुरुप्रसादविरचिता प्रबोधचंद्रोदय नाटक प्रथमांऽकटिप्पणिका समाप्ता ॥ १ ॥



ॐ श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीगुरुभ्यो नमः ।

अथ द्वितीयोङ्कप्रारंभः ॥ २ ॥

दोहा ।

असुर विदारे जाहि जग, देवनकियो उधार ॥
तारघुनायक विमल पद, बन्दों वारंवार ॥ १ ॥

सवैया ।

तव दंभको स्वांग भयो अतिसुंदरजाहिपिखेजगशीशनिवाए ॥
करसैननहीं समुझावतहै सभपेखत राजसभा महिआए ॥
मुख एहुकही महा मोहवली सिरहाथधरे जगमाहि पठाए ॥
सुत दंभ अमातन संगविचार विवेक कियो वहु होननपाए२॥

महोमोह उवाच ॥

सवैया ।

इह विवेक विचारकियो सुप्रबोध बलीसुतलेहि उपाए ॥
ताहिनिमित्त सुतीरथमै, शम औ दम आप विवेक पठाए ॥
है हमरे कुलनाशनिमत्त इहै जगमाहि विरंचिवनाए ॥
तुम होइ सुचेत उपायकरो जिहते इह नाशनिमत्त मिटाए॥३॥
तिन तीरथमाहि वनारसजो बहु मोक्षनिमित्त विरंचिवनाई ॥
शिवकी नगरी सुतदंभवरो सुकरो तुम जाइके एहुउपाई ॥

(१) विषयोंमें अत्यंत आसक्तिका हेतु, जो अहंमम अभिमान है ताका नाम महामोहहै ॥

चहूं आश्रमकी कल्याणमिटे जिहते नह मोक्ष सुहोवनपाई॥
बस मोहि बनारस एहुकही सभस्वामीकह्यो सुकऱ्योममआई४

दम्भे उवाच॥

दोहा।

जाहि निवास सुमैंकरों, सुनो तिनोकी गाथ॥
मनमथके उत्सवभजें, लोक निवावें माथ॥ ५॥

कवित्त।

बारवधू भौननिसबसमदपानहास,
कामके कलोलनिसों जामिनी बिताइ है॥
चाँदिनीसुरात मनमत्थके हुलासभए,
नारिनके संगसु अनंगसुख पाइहै॥
नाइ प्रातकाल मले अक्षत लगाइ भाल,
धूरत सुबडो सबलोगनि रिझाइहै॥
दीषत सर्वज्ञ पुन तापसी ब्रह्मज्ञयह,
हव्यवाहहोमहम कदीनचुकाइहै॥ ६॥

दोहा।

योंदिनमें वंचत जगत, निसमें रसकरसाल॥
महामोह भूपालको, मैं कृतकीन बिसाल॥ ७॥

कवि उवाच॥

दोहा।

धाम बनारस गंगतट, बैठे दम्भ उदार॥
कोइक आवत देखिकर, बोले वचन विचार॥ ८॥

(१) आपने महानूपनेकी सिद्धि वास्ते लोकोंके समीप आपणेंकूं अत्यत धर्मात्माप-णे करकै जो प्रसिद्ध करणा है ताका नाम दम्भ है। (२) निरंतर हमारा अग्निहोत्र है॥

दम्भउवाच ॥

सवैया ।

कौन उलंघ भगीरथिको इत आवतहै सरितातटमाही ॥
ज्वाल मनोअभिमानहकी जन तीनहु लोक ग्रसे मुखमाही ॥
वाक कहे इहभांति मनो सुदवावतहै सभको जगमाही ॥
बुद्धि वडी दमकै उरमें सभको उपहास करे मनमाही ॥ ९ ॥

कवित्त ।

राढा जो प्रसिद्ध देश दक्षणकलेश हर,
तिन हीते आयो यह ऐसे मनआइहै ॥
आर्य्यअहंकार सुहमारो तहां नीतबसे,
समाचार लेहु कछु मोहिको सुनाइहै ॥
ऐसे मन दंभ सुविचार नीके करे तव,
आयो सुहंकार चाल हंससी सुहाइहै ॥
अहोबहुमूरख जगत यह छायो सभ,
ऐसे सुहंकार मुख बैनन अलाइहै ॥ १० ॥
भटपाद मतको नजानत अजानलोक,
नाहि प्रभाकरको मरम पछानई ॥
तोतांतिकगंभीर मत धीरनहीं पारलैहे,
सार्लकको ततज्ञान कोई नहीं जानई ॥

(१) मीमांसकभट्टपाद—देहादिकोंसे भिन्न जडचेतनरूप आत्मा मानेहै । (२) पूर्वमीमांसाका एकदेशी प्रभाकर—देहादिकोंसे भिन्न ज्ञानगुण विशिष्ट हुआ आत्मा चेतन मानेहै । (३) कौमारिल शास्त्रके तत्त्वको नहीं जानते । (४) शारिकनामग्रन्थके तत्त्वज्ञान कहिये सिद्धांतको अर्थात् शांतत मुनिके मतमें वासुदेवही प्रथम प्रकृतिरूपही तत्त्व है ताके ज्ञानसे शून्य है ॥

वेदव्यास वाकपति कपिलकणादमत,
और जो महोदधिको मत कवि भानई ॥
महोवृत्तिना निहारे पुन ब्रह्मकोविचार,
कहा नाम नरपशु सभ ऐसे हमजानई ॥ ११ ॥
एई जो पेखये महानमान बोझभरे अति,
महापशु बुद्धिकछु अरथकी नाइहै ॥
कटिमैं पीतांबर अडंबतोखूवकरै,
सामवेद धुनि पुन ऊँचे सुर गाइहै ॥
पूछिये जु वात तु रिसात मन क्रोधभये,
फेरफेर मूढ वेदपाठ न सुनाइहै ॥
वेमुख आचार श्रुतिचारको विचारकहा,
जीव काके हेत मूढ वेदन वहाइहै ॥ १२ ॥
औरठौर गयो पुन कौतुक सुनयो पिख,
वोलियो हंकार सुगुलाव पहिचानिये ॥
नामतो सन्यास मांग भिक्षा विलास करें,
यही जतीनाम लोक माहितो वखानिये ॥

(१) वेदव्यासका वेदांतमत तथा वाचस्पतिका मत औ कपिलकृत सांख्यशास्त्र का मत तथा कणादकृत (न्यायशास्त्र) का मत तथा महोदधि कहिये शेषमणीत भाष्यकामत । (२) पाशुपत शास्त्र संहिता नही देखी तौ ब्रह्मका विचार सूक्ष्म होनेते अति कठिन है । (३) सर्व मनुष्यरूप पशु है सो शास्त्रमेंभी कहा है:—
श्लोक—आहारनिद्राभयमैथुनानि, सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ॥ ज्ञानं नराणामधिको विशेषो, ज्ञानेन हीनाः पशुभिःसमानाः ॥ इति ॥ इन सर्वमतोंका अर्थ विस्तारभयसे लिखा नही (४) शुद्ध वेदपाठी ब्राह्मण । (५) भिक्षामात्रवास्ते यतीपणेको ग्रहण किया हैनहीं मुक्तिके वास्ते ॥

मूंडे तो मुडाए नाम पंडित कहाए कछु,
ज्ञानहूं न पाए करवेदभाष्यठानिये ॥
कीनेहैं व्याकुल विदांतके प्रकरणसभ,
आवतहै हास मुहि यहि सुनि वानिये ॥ १३ ॥
प्रत्यक्षते विरुध अरथ भाषत वेदांत सभ,
एकही अखंड ब्रह्म दूसरो नगायोहै ॥
ऐसे जो विदांतशास्त्र मानतप्रमाण मूढ,
बौद्धनके ग्रन्थनमैं प्राध कौन आयोहै ॥
सेवरा सन्यास बौद्ध ग्रन्थ औ विदांत एक,
भिन्नभिन्न नामइक छलके चलायोहै ॥
तिनहूंके संग पुन बोले महापाप चढें,
ऐसे मुख भाष पांउआगे सुउठायोहै ॥ १४ ॥
एही शैव पाशुपत आगम सुशैव रति,
रासभसमानतन भसम लगाइहै ॥
पशुहै अदंड लोकमाहिं सुपखंड करें,
इनसों प्रभाष नर नरक सुजाइहै ॥
शैव पाशुपतके निहारे होइ पाप अति,
पेखिये सुनाहि इन ऐसे बुद्धि गाइहै ॥
गुलाब सिंह देखिके हंकारकी बिसाल छवि,
लोगनिके पुंज पुन आगेही पलाइहै ॥ १५ ॥

---

(१) नहीं मनको मुण्डाया-पण्डित कहाते हैं परन्तु पण्डित नहीं है । (२) प्रत्यक्षादिप्रमा सिद्ध जो अर्थ है तिससें विरुद्ध अर्थके कहनेवाले वेदांत शास्त्र यादिप्रमाणरूपकर मानतेहै तौ बोधके ग्रन्थोंमें क्या अपराध है अर्थात् तिनोंकोभी प्रमाणरूप मान्या चाहिये यह तात्पर्य है । (३) शैव प्रधान पाशुपत व्रत है जिन उपासकोंको तिनका नाम शैव पाशुपत है ॥

औरठौर गयो पुन पेखिमुछकानो अति,
अहो वकध्यान पटऊजल सुहाइहै ॥
गंगनीर धारतट शीतलसिलासवार,
प्रोक्ष प्रोक्ष आप कुश आसन विछाइहै ॥
लए अक्षमाल मुख मंत्रतो विसाल जपें,
अंगुलकेमाहिं कुशमुद्रे सुवनाइहै ॥
एही दंभवंत धनवंतनिके वित्त हरें,
बीच मंत्र न्यासकर अंगुली हलाइहै ॥ १६ ॥

सवैया ।

हंकार तवै पुन पांइ उठाइ चल्यो मछकाय पिखेजनआना ॥
है कर माहिं त्रिदंडधरे मख छूत वकै सुलदे अभिमाना ॥
द्वैतसुनाहि गहै उरमैं पुन नाहि अद्वैतको रंच पछाना ॥
पंथ उभै इह भ्रष्ट भये भनि आश्रम और पिखे मछकाना १७॥
किहको इह आश्रम पावनहै ढिग द्वारन ऊच सुवंस गडाए ॥
सुमनो तिन ऊपर नाचतहैं सित अंवर पुंज हजार तनाए ॥
इतहै कृष्णाजिन यूप शिला इतते चमसा वहुभांति सुहाए ॥
इत मूसल और स्वऊखलहै इत केसरकुंभ सुचीत वनाए॥ १८॥
घृतहोम सुगंध सुधूम वडो तिन श्याम सभोनभमंडलकीनो॥
यह गंगसमीप सुआश्रमहै पिख मोहि सभो श्रम होवत खीनो
ग्रहमध्य वडो धरमात्मको तिनको यह आश्रम आहिनवीनो
सुभलो यह आश्रमपावनहैदिनदोइ सुतीननिवास सुखीनो ॥

---

(१) रुद्राक्ष माला । (२) द्वैताद्वैत उभै । (३) काले मृगकी त्वचा-यूप थंभा-चमसा यज्ञपात्रविशेष ॥

दोहा।

ऐसे धार हँकार उर, बन्योचहै तिहमाहि ॥
पुरुप निहाऱ्यो एक तिह, रूप सुनीजे ताहि॥ २०॥

सवैया।

मृंदलांछततां तनु सुंदरहै, पुन भाल विषे घसि चन्दनलाए॥
भुज औ उदरे उर कंठ उरू पुन ओठन चन्दनटीक बनाए॥
दृग जानु कपोल सुपीठविषे चिविकेबहु चन्दनटीक सुहाए॥
कुश चूंडकटे कर काननमैं सुमनो यह दंभइ सोचमकाए२१
सुभले अब याहिसमीप चलों इमधार चले मन सूष घनेरे॥
ढिगजाइ उठाइ भलेकरको मुख एहुकही कल्याण सुतेरे॥
पुन दंभ हूँकार कीयो मुखते इम वारतहै नहि आउ सुनेरे॥
इंतनेमहि आइगए वटुबालक बामन वाकसुनो तुममेरे॥२२॥
दूरहि ठाढरहो द्विज जू इह आश्रमकी गति तोहि नजानी॥
पादपछालन आप करो करभीतरऊ जल लेहु सुपानी॥
तो इमआश्रम पांउधरो इम कोन वरो वटु एहवखानी॥
क्रोधभयो सुहंकारवड़ो इहभांति सुनी वटुकी जववानी॥२३॥

हंकार उवाच॥

सवैया।

हाविधि कौन कुदेशअए जिहदेशन याविध लोक बसैंहै॥
कोविदलोक प्रसिद्ध बडे हमसें जिनदेशन आतिथऐहै॥

(१) मृत्तिकाके बिंदुकर चिह्नित है शरीर जिसका। (२) शिखा। (३) दम्भका शिष्य। (४) आपणे अनिष्टकरणे विषे तथा परके अनिष्ट करणे विषे प्रवृत्ति करावणेहारा जो अभिज्वलनरूप अंतःकरणकी वृत्ति विशेष है ताका नाम अहंकार है॥

आसन पाद जलं अर्गा तिनके हित नाग्रही पुन लैहै ॥
नाहिछुहे जल मंडलको हम और सुदेशहि जाइ वसैहै॥२४॥

कवि रुवाच ॥

दोहा।

करकी सैनी दंभकर, कीनो ताअँस्वास ॥
इह जनावत थिररहो, काहेभये उदास ॥ २५ ॥

सवैया।

तव बोलमुखोवटु एहकही गुर याविधिते द्विज कीनवखाना ॥
भयो तव आगम दूरहिते हम ना कुलशीलसुतोहि पछाना ॥
सुनि यह बात हंकार बली मुखभाषत है उरमैं खुनसाना ॥
हमरो कुल शील परीक्षनकैअवलायकमूढ सुतोहि प्रमाना २६

दोहा।

सुन मूर्ख अवतैं कहों, गौड प्रसिद्ध सुदेश ॥
राढापुरी प्रसिद्धहै, पेखत हरे कलेश ॥ २७ ॥

कबित्त।

भूरश्रेष्ठनाम पुन ताहिमै प्रसिद्धधाम,
ताहिपति तात मम लोकमैं बखानेहैं ॥
ताहिके जुपूतहैं सुपूतऔ कुलीन वडे,
देशनप्रसिद्ध लोकलोकमाहि जानेहै ॥
तिनमे विवेक विनय धैर्य अचार शील,
प्रगट उदार मम कोविद प्रभानेहै ॥

(१) धीरज ॥

सोई हमआए विधिलोककिधोनएभये,
भयोसु अचंभ जनमोहि नपछानेहै ॥ २८ ॥

दोहा ।

सुनत वात पुन दंभयह, बटुकी ओर निहार ॥
सैननहीं समुझाइयो, देहु पाद हितवार ॥ २९ ॥

सवैया ।

ताम्रघटी बटुले करमैं पुन उज्जलवारि सुपूर लियायो ॥
ताम्रघटी करले भगवंत करो पदक्षालन एहुअलायो ॥
हंकार कह्यो हम रोंवकरें, जगकाहूंको नाहिबने सुदुखायो ॥
धोइकिपांउ सुआश्रममें बरनेहिततााहि सुपांउ उठायो॥३०॥
दंभे तबे पुन दंतचबाइ चढ़ाइ भ्रुंए मुख एहु अलाए ॥
दूरहि पांइ गडायरहो द्विजमूढकहाढिग आवत धाए ॥
तेतन स्वेतकी विंदुसुनो पसरें इतते उत वायुचलाए ॥
ब्रह्मण्य अपूर्व एहु पिखी सुहंकार कह्यो मनमै खुनसाए॥ ३१॥

दोहा ।

बहुर बटुमुख बोलियो, ब्रह्मण्यइ सोही होहि ॥
उत्तम द्विजयालोकमैं, कबकब पेखे तोहि ॥ ३२ ॥

सवैया ।

भवभारतखंड महीप जिते पदपंकज[2] नाहि छुहें डरपाए ॥
पदकंजसिंहासन भूतलकेढिगआनसभेनिजमोल झुकाए ॥

---

(१) दम्भने दन्तोंको दबाय भ्रूको चढाकर बटु बालकके प्रति देखा तब बटुने अहंकारके प्रति कहा । (२) दम्भके चरणकमलको ॥

मुकटामणिकी सुमरीचिनके पद वारजआरती दीपजगाए ॥
इनके ढिगजाइ निशंक सुनो मतिभूलगई द्विजतूं खुनसाए २३॥

दोहा ।

सुन हंकार सुमनविषे, कीनो इहै विचार ॥
मनो सुयाही देशमें, दंभ लयो अवतार॥ २४ ॥
भवतु तथा इह आसने, मैं अब करों निवास ॥
उरूनिवावेताहिने, आसनबैठनआस ॥ २५ ॥
मैवं मैवं बोलबटु, ऊचे कीन प्रकाश ॥
आराधपाद आसनइहै, और नकरे निवास ॥२६॥

सवैया ।

तब बोल हंकार सुएहुकही मनभीतरकोप भयो अतिगाढा ॥
दक्षिणदेश प्रसिद्ध बडो तिह भीतर शुद्धपुरी इक राढा ॥
सुनहोतिनमाहि प्रसिद्धवध्योगुरुके कुलवासकन्योअतिपाढा
हमजो नाहिं आसन लायकहैं कहु तैंगुरु कौन ब्रह्मंडते काढा २७
सुन मूर्ख कान भले धरियो इक औरप्रसिद्ध कहौं तव बाता ॥
द्विजकोविद लोकप्रसिद्धबडेसुवरीतिनकी दुहितांविष्याता ॥
कुलउज्वलजानि मरालनकों,तिनके सम नाहिं अहे ममभाता
तिसते हम लोकनमांहि बडे हमरे सम नाहिं अहे मम ताता २८
मम सालकमित्र सुमातुलकी दुहिता इक और भलीजगगाई॥
तिनकेव्यभिचारकीझूठकथा शठलोकननेजगमाहिं अलाई॥
तिनके निजमाहिसंबंधपिखे मति ताहिसमे अतिमे खुनसाई॥
निज नारि मनोगत जीषिणमें सुमूढबटू घर नाहि टिकाई २९

(१) रश्मिकरकै (२) गुरु । (३) कन्या । (४) श्यालक (श्याला) ॥

सुनिके यह बात सुदंभ वली मनभीतरसों अतिसै खुनसाने ॥
द्विज तूं निज ऊजलता अपनीजगभीतरयाविधिमोहिवखाने॥
सुन मोहि महात्मलोकनमैं द्विजरायसु तोहि न रंच पछाने ॥
कछु आहि अपूर्ब उजलता ममभीतर सो चतुरानन जाने॥४०॥
हम एकसमेविधलोक गए मुनि मो पिख आसनते सुउठाये ॥
इहठौर वसो मुनिवृंद कहें बहु आसन नाहमरे मनभाए ॥
विधि आप सुगंदकरी मुखते पुन गोबरसोंनिजजानुलिपाए॥
करजोर भलीविधि आदरकै तिनऊपर मोहिविरंचि वैठाये ४१

दोहा।

वहुर हंकार सुवोलिया, दांभिक ब्राह्मणजान ॥
कह विरंच पुन नर कहां, कीनो झूठवखान ॥ ४२ ॥
अथवा यह द्विजदंभहै, ताहीकीन उचार ॥
ऐसे मने विचारकर, भयो क्रोध हंकार ॥ ४३ ॥

सवैया।

कौन सुरेश्वरको विधिहै, ऋपिकौन सुनो किहते उपजाए॥
मेतपको फल जानत नासुन बामन तूं मनमे गरवाए ॥
कोटिसुरेश्वर विरंचिमुनीपद पंकज मोहि परे डरपाए ॥
रिषिकी उत्पात्तिकी भूमिकही सुपुराननमाहि सुनो मनलाए४४

(१) शपथकरी (२) इंद्र अहिल्यागामिहोनेते कछु नही तथा ब्रह्मा स्वकन्यागामी होनेते सोभि कछु नही (३) यद्यपि पुराणोंमें ऋषियोंकी जन्मभूमि उक्तरीतिसे कही है। तथापि अहकारको आसुरी सपत्में होनेकर गर्वसे तथा अपनी सामर्थ्यके जनावने अर्थ सर्व ऋषियोंको नीचस्त्रीयोंसे जन्मरूप हेतुकर निकृष्टता (न्यूनता) सूचन करीहै ताको सुनके आस्तिकपुरुषने कुतर्क नहींकरना-काहेतें, जैसें प्रपंचकी उत्पत्तिसेंलेकर प्रलयपर्यंत इन्द्रादि देवता परमेश्वरने संसारमर्यादार्थ स्थापन कऱ्येहै तैसे व्यास वसिष्ठादि महानृऋषिभी-

ऋषिशृंग मृगी कुशकौशिकऔगजनीहस्तामलजूं उपजाए॥
वारवधू सुबसिष्ठ जए दुहिता पुन झीवरव्यास उपाए ॥
शशिनारिविषे रिपिगोतमजे पुन मांडवमें डकिते निकसाए॥
तन्या सुचंडाल पराशर जूंरिषिऔर मतंग मतंग निजाए ४५॥
तव दंभ विलोक अनंद भयो, यह आर्य मोहि पितामहआए॥
नाम हंकार कहें जिनको, इन पेखनते मनमे विगसाए ॥
आर्य लोभकोमैं सुतहों, मम दंभकहें तव लागतपाए ॥
हंकारधरियो सिर हाथ तवै, सुतदीरघआयुवडेसुखपाए॥४६॥

सवैया ।

द्वापरअंत सुमोहि पिखेतव वालहुते तव अंग मलाने ॥
काल वितीत भयो वहुतो सुत याजगमें हम हैं सुवुढाने ॥
नैनन मंद सुडीठ भई इहिकारणते सुत नाहिं पछाने ॥
आज अनंद भयो पिखते सभ अंगनमो तुम हो चिलकाने ४७॥

–परमेश्वरने संसारमर्यादार्थ स्थापनकीयेंहै इसीवासते अनेक जन्मकर्मोंकरके लोगोंको अपनेअपने धर्ममें नियुक्तकरेंहै तथा आपभी आचरण करेंहैं परन्तु तिन जन्मकर्मादिकोंकरके आत्मज्ञानका वाध होवैनहीं तथा मोक्षभी अवश्यहोवैहै याअभिप्रायवाला व्यासभगवान्का सूत्रहै तथाचसूत्रंः–(यावदधिकारमवस्थितिराधिकारिकाणां) अर्थ यहः–सृष्टिके आदिकालविषे जगत्व्यवहारके चलावणेवास्ते परमेश्वरने स्थापनकर्ये जे इंद्रादिदेवता तथा वसिष्ठ भृगु नारदादिक अधिकारी पुरुषहै तिनअधिकारीपुरुषोंकूं जितनैकालपर्यंत सोअधिकारहोवै है तितनै कालपर्यंत तिनोकी स्थिति होवैहै औ मध्यकालविषे किसी वर शापके वशते तिनअधिकारीपुरुषोंकूं जन्मांतरकी प्राप्तिहुएभी आत्मज्ञानका वाधहोवैनही तथा ताअधिकारकी समाप्तिकालविषे तिनोंकूं मोक्षभी अवश्य होवैहै इति) इससूत्रप्रमाणसें महान्ऋषियोंका जन्मकर्म संसारमर्यादार्थ होनेतैं अहंकारकृत निकृष्टता (न्यूनता) नहीहै; किंतु, उत्कृष्टता (अधिकता) है यह तात्पर्यार्थहै ॥

तव आहि कुमार सुजूठ बडो कहु आनंदसों जग भीतर सोई॥
तब दम्भ कह्यो इह ठौर बसें बिन ताहि नमें जग जीवन होई॥
तव मात पिता तृष्णा पुन लोभ कहो सुखसों जगभीतर दोई॥
पुन दम्भ कह्यो महामोहकी आयसु पाइ बसें इह ठौर सुओई४८
आपकहो किहकारणते इह ठौर प्रसाद कियो तुम आए॥
हंकार कह्यो सुतमोह महीपको गोप संदेश सुहै हम ल्याए॥
चाहत ताहि विवेक हते निज कान सुने सभ लोक अलाए॥
ता बिरतांत सुनावनके हित आवन मोहि भयो समुझाए॥४९॥
तब दम्भ कह्यो सुखसंग अए तव पेखनते मम देह सिरानी॥
मोह महीप सुआइ इहाँ सुरलोकहिते जन एहु बखानी॥
मोह महीप शिरोमणि जूं शिवकी नगरी सुठई रजधानी॥
सभलोक कहें सुखपंकजमें मम आप सुनी यह बात सुकानी५०
हंकार कह्यो किहकारणतें बहु लोकपती इह ठौर बसाए॥
दम्भ कह्यो इहि कारण है सुविवेक कहूं जग होन न पाए॥
बोध उदे यह भूमि बनारस वेद पुराण इहै सुखगाए॥
कुलनाशकबोध निवारणको इह ठौर निवाससुमोहिठहराए५१
हंकार डरे सुनि बात इहै शिवके पुर बोध सुकौन मिटाए॥
तिन ठौर बसें सब जीव जितेसुखसों शिव ताहिके बन्धछुड़ाए

(१) तथाचाथर्वणश्रुतिः—मुमूर्षोर्दक्षणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम् ॥ उपदेक्ष्यसि तं मंत्र स मुक्तो भविता शिव। (२) तच्च ज्ञानं भवेत्पुसां सम्यक्काशीनिषेवणात् ॥ अर्थ यहः—श्रीरामचन्द्रजी कहतेहैः—हे शिव जिसकिसी मरणइच्छु पुरुषके कर्णमे स्वयं (आपही) तिस मंत्र (तारक) का उपदेश करोगे सो पुरुष तारकमत्रोपदेशजन्य ज्ञानद्वारा मुक्त होवैगा ॥ १ ॥ ब्रह्मात्म्यैक्यलक्षण जो ज्ञान सो पुरुषोंको सम्यक् काशीके सेवनसे होवैगा ॥ २ ॥

अंतसमैं करुणाकरके सभ कानन तारक¹ मंत्र सुनाए॥
सभ पाप मिटे शिव पेखनतें क्षणभीतर जीवन बोध उपाए५२
तवदम्भ कह्यो इह वात सही परे² होवतना सभजीव मझारा॥
तिनको नहिबोधकदाचितहैजिनके उरकाम सुक्रोधविकारा॥

(१) श्रुतिः। देहान्ते देवस्तारकमुपदिशति स्मृतिरपि—ममूर्षो मणिकर्ण्यन्तरर्धोदकनिवासिनः॥ अहं दिशामि ते मंत्रं तारकं ब्रह्मसंज्ञकम्॥ अर्थ यहः—देहान्तकालमें महादेवजी तारकमंत्रका उपदेश करतेहैं॥ तथा महादेवजी कहतेहैंः—हे प्राणी मणिकर्णिकाके अन्तर अर्ध जलमे निवासकरनेवाले अर्थात् आधेशरीरको जलमें रखनेवाले तथा मरणकी इच्छावाले तुमको मै ब्रह्मसंज्ञक तारकमंत्रका उपदेश करताहूं इति॥ इस कहनेकर यह अर्थ सिद्धभया कि काशीमें मरण जन्तु मात्रको साधारणतया मुक्तिका हेतु है यह अहंकारने दम्भके प्रति कहा—तारकमंत्रका अर्थयह हैः—संसारसे भयभीत पुरुषोंको जो तारे (मुक्तकरे) सो तारक मंत्र कहियेहै।

(२) तव दम्भने अहंकारप्रति कहा येवार्तासत्यहै परन्तु भारत औ पुराणमे यह लिखा हैः—श्लोक—यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयुतम्॥ विद्या तपश्च कीर्त्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥ १॥ अदाम्भिको निरालंबो लघ्वाहारो जितेंद्रियः॥ विमुक्तःसर्वसंगैर्यःसतीर्थफलमश्नुते॥ २॥ अर्थ यहः—जिसके हाथ तथा चरण निषिद्धक्रियारहितहैं तथा जिसको तीर्थ माहात्यका ज्ञानहै औ कृच्छ्रचान्द्रायणादि तपसहित है तथा निष्पापकीर्तिवाला है सो तीर्थमहात्म्योक्त फलको प्राप्त होवैहै॥ १॥ जो पुरुष दम्भरहितहै तथा आश्रयरहित है तथा अल्पाहारी है तथा इन्द्रियजित है औ सर्वसंगसैं रहित है सो तीर्थमाहात्म्योक्त फलको प्राप्त होवै है॥ २॥ यद्यपि भारतपुराणमें ऐसे लिखाहै तथापि श्लोक—नाविमुक्तो मृतः कश्चिन्नरकं याति किल्बिषी॥ ममानुग्रहमासाद्य गच्छत्येव परां गतिम्॥ १॥ वाराणस्यां स्थितो यो व कामरोषरतः सदा॥ योनिं प्राप्यापि पैशाचीवर्षाणामयुतत्रयम्॥२॥ पुनस्तत्रैवनिवसञ्ज्ञानं प्राप्नोत्यनुत्तमम्॥ तेन ज्ञानेन संपन्नो मोक्षं प्राप्नोत्यनुत्तमम्॥ ३॥ अर्थ यहः—महादेवजी कहतेहैंः—अविमुक्तसंज्ञक काशीक्षेत्रमें मराहुआपुरुष पापी भी है तौभी नरकको प्राप्त होवै नही किंतु मेरे अनुग्रहकू प्राप्तहोयकर परमगति (मोक्ष) को ही प्राप्त होवैहै॥ १॥ तथा जो पुरुष काशीमे स्थितहुआ सदाकामक्रोधादिकोंमेंही प्रीतिवाला है से पुरुष तीनअयुत (३००००) तीसहजारवर्षपर्यंत पैशाचयोनिको प्राप्त होयकर॥२॥ पुनः तिसकाशीमें वसताहुआ अनुत्तमज्ञानको प्राप्त होवै है तथा तिसज्ञानकर संपन्नहुआ अनुत्तममोक्षकोही प्राप्त होवैहै॥ ३॥ अयुतप्रमाण पैशाचयोनिको प्राप्त होवैहै याकाभाव—

जिनकेकर पाद मनो बस है, तपकीरतिसोंजगहै उजियारा॥
वहुतीरथको फलपावतहै, यह भारत और पुरान उचारा॥५३॥

दोहा ।

वेत्रपाणि आए तवै, कंचुंक पाग अनूप ॥
नागरजन आए सुनो, महामोह जगभूप ॥ ५४ ॥

सवैया ।

चन्दनके छिणकावकरोमणि फाटक हेम सुवेद बनावो ॥
जलयंत्र सभै ग्रहखोलिदिजे तिनभीतर कुंकुमगंध मिलावो॥
सभ द्वारन बन्धनवारकरो गजमोतिनहारलडी लटकावो॥
शक्र सरासन चित्रधुजा सभसौधनकोसिरमाहि झुलावो ॥५५॥

कबित्त ।

फेर दंभकह्यो महाराज हैसमीप आए,
चलिये अगारी सनमान अति कीजिए ॥
कह्यो है हंकार तुम भलोही उचारकियो,
हूंजीए तयार सुउपायनकोदीजिए ॥
जाइके उपायन सुपायनके माहि धरी,
जोरकर कह्यो यों वनारस पिखीजिए ॥
आए महामोह भूप पुरमैं प्रवेशकियो,
विविध विभूति प्रवारसो सुहीजिए ॥ ५६ ॥

—यह हैः—काशीमें मरेहुए पुरुषको भैरवीयातनासै पापका फल थोडेकालमें भोगाया जावैहै, औ काशीसे बाहरमरे पुरुषकोयमयातनासें पापका फल चिरकालमें भोगाया जावैहै यह विशेषता है औ (नाविमुक्तोमृतः) इस श्लोकमें (ममानुग्रहमासाद्य) इस पदकरभी ज्ञानप्रदान रूपानुग्रहका ग्रहण है, यातै (ज्ञानादेवतुकैवल्यम्) इत्यादिश्रुतियोंसैभी विरोध होवै नही इति । (१) चोला । (२) भेट ॥

महामोह भूपसु अनूप पिख हसै अति,
अहोजडबुद्धि सभलोक वौरानेहै ॥
लोक परलोकमाहि भोक्ताअनूपसुख,
देहते विभिन्न मूढआत्मा वखानेहै ॥
आकाश तरुफूल नविसाल फलआश,
करें कहो नभफलहूंको स्वाद किनजानेहै ॥
भयेखोटे पंडितपखंड सुचलाए जग,
वोलसुकपोल लोगसगरे ठगानेहै ॥ ५७ ॥
जोई जग नाहिताहि वस्तुको सुआहिकहें,
भयेहै वचालवाक मृषावेद मानई ॥
चारवाकनके वाक सत्य ताहिको असत्यकहें,
भये मूढलोग ताहि निंदाको वखानई ॥
अहो तत्व सारको विचार तुमआपकरो,
काटे तनशीश दृगवाही ओर ठानई ॥
तनते न्यारो जोपधारे जीवपिखे कोई,
तवी तनु भिन्न यह आत्मसु जानई ॥ ५८ ॥
लोगनिको वंचपुनवंचो निज आत्मको,
शीतजलनाइवृत आत्मतपाइ है ॥
नाक मुख पाद पान देह हैं समान सभ,
मनमै न आइ कर्म वर्णको वताइहै ॥
आपनी पराई नारि संपदा वताई श्रुति,
नाहि हम जाने सठ भेदको अलाइ है ॥

नारि धन भोग पुन पापकोविभाग यह,
आपनो परायो वलहीन मुख गाइ है ॥ ५९ ॥
आत्मा शरीर यह धीर चारवाक कहै,
आगम प्रमाण एकताहिको सुलेखिये ॥
भूमि जल तेज वायु तत्वसो वताइदए,
जाहि मै प्रमाणसु प्रत्यक्ष एकपेखिये ॥
नारिनको भोग और द्रव्यको संयोग जोई,
यही पुरुषार्थ न और कछू देखिये ॥
चेतन सुभूत होई नाहि परलोक कोई,
मोक्षविनमृत और दूसरो नपेखिये ॥ ६० ॥

कबित्त।

यही मनधार मुख बुद्धनेउचारकीयो,
उत्तमसिद्धांत चारवाकको पढायोहै॥
चारवाक शिष्यनपर शिष्यन पढाइ सभ,
यही सुसिद्धांत लोकभीतर चलायो है ॥
ऐसे सुन चारवाक चारवाकशिष्यलिये,
पेखत समाज राजसभामाहि आयो है ॥
शिष्यको बुलाय समुझाय वात एहुकही,
दंडनीति विद्या और कछु गायोहै ॥ ६१ ॥

(१) पुरुषार्थहीन कहतेहै। (२) अर्थकामौ परमपुरुषार्थौ न धर्मो नापिमोक्षः। अर्थ यहःहै—धन तथा काम दोनोहि परमपुरुषार्थ है चारवाकके मतमें न धर्महै न मोक्ष है। (३) देहपातही मोक्ष है। (४) राजनीतिही विद्याहै ॥

शिष्य उवाच।

दोहा।

वेदत्रयी गुरुईशकृत, विद्या कहें उदार ॥
वेदनसों कय्यो जजन, पाए स्वरग अपार ॥ ६२ ॥

चारवाक उवाच।

सवैया।

धूरतको परलाप सुनो यह वेदत्रयीजगमाहि वखानी ॥
याचक यग सुद्रव्य विनाशक ए स्वरलोक जिवावत प्रानी ॥
तौ वहु दाह दहे द्रुमजे फल भूरलहैं बहुरीति समानी ॥
है नकछू सुकपोलकही धनवंचनके हित एह कहानी ॥ ६३ ॥
कृतश्राद्ध ईहा मृतजीवनको पुनजो परलोकविषे तृप्ताये ॥
जलगंगदए तवही जगमैं कुरुजांगलखेतनको विगसाए ॥
मृतदीपशिषा बहुतेलदीये विनपावक सोग्रहमैनिकसाए ॥
कृतविंयो तनकै जगलोगठगेसुखएहुकहे विधिवेदवताए ॥ ६४ ॥

शिष्य उवाच ॥

सवैया।

गुरुखान सुपान हिप्राणप्रिया सुखसो पुरुषार्थ आपअलाए ॥
इहतो पुन तीरथकार जिते किहकारण भोगनते डरपाए ॥
जग सूखतजे बनजाइ वसे, तप दीरघसो निजदेह तपाए ॥
जगभोगनत्याग सुयोगभजे सुखहेत इहैविधिआगमगाए ६५ ॥

---

(१) वश्चकका अनर्थवचनयेवेद तीनो है। (२) ऋत्विजः—यज्ञ, होमादि—द्रव्य पुरोडाशादि—प्राणि यजमान। (३) निर्वाण। (४) वहानेको करके वा वश्चनप्रकार करके। (५) ग्रन्थकार ॥

चारवाक उवाच ॥

सोरठा।

धूरत कीन प्रलाप, आगमनाम सुताधरे ॥
आशामोदक थाप, मूर्ख तृप्तसुहोवई ॥ ६६ ॥

सवैया।

दृग दीरघ अंजनशाम खिरंजन नील सरोरुह हैबिगसाए ॥
नवनागऱ्यानवनाग कला अलिकै अलिसीसुकपोलसुहाए॥
कह ताहि अलंगनसे जनमैं कह पावक पंच सुदेहतपाए ॥
कह विंजन भीष अहार कहां उपवासनकै सठ देह सुकाए६७॥

शिष्य उवाच ॥

चौपाई।

हे गुरुग्रंथकार हैं जेते। ऐसे वचन वखाने तेते ॥
दुःखविमिश्रत सुख संसारा। ताते ताको करोप्रहारा ॥ ६८ ॥

कवि रुवाच ॥

दोहा।

सुनत शिष्यकी बातको, हसे सुबालक जान ॥
चारवाक पुन युक्तिसों, आगे करे वखान ॥ ६९ ॥

चारवाक उवाच ॥

सवैया।

दुःखसंग मिले जगके सुख जेत्रहि दूरतजो इहभांति वखाने ॥
ते निरबुद्धि महापशु हैं हम जीवन के परतारक जाने ॥
सितेतंदुल जे, तुखसंग मिले तिह नाहि तजे जन जें सुरज्ञाने ॥
इहभांति लोकायत वाकसुने महामोहबली मनमैं बिगसाने७०

(१) वञ्चक। (२) श्वेत। (३) देवज्ञानी ॥

महामोह उवाच स्वपत्नी प्रति।

सवैया।

मानानि काननमाहि सुनो यह वाक प्रमाण महासुखदाई।
माहि निदाघमनो वरषा तिमकाननको सुख शीतलताई॥
सानंद ताहि विलोकनकै नृपमोह वली इह बात अलाई॥
आहि लोकायतसज्जनमें इन वाकनकै उरमें हरषाई ॥७१॥

दोहा।

तिह औसर आयो तवै, चारवाक प्रधान॥
पेखि समीप सुजाइकै, कीनो एहु वखान ॥ ७२ ॥

चारवाक उवाच॥

चौपाई।

जयजय महाराजजगकारण। तुम त्रिभुवनके हो प्रतिपारण ॥
चारवाकपद करे प्रणाम। सेवक सदा पछानो नाम ॥७३॥

महामोह उवाच।

चौपाई।

चारवाक सुखसों तुम आए। वहुत कालकै दरसन पाए॥
सतयुग त्रेता भये वितीत। तुमरी सारन पाई मीत ॥ ७४ ॥
द्वापर अंतभई कछु सारे। कीटभदेस वसतहैं प्यारे॥
वैठो ईहा समीप हमारे। समाचार कछु करो उचारे ॥७५॥

(१) ग्रीष्मऋतुमें। (२) पृथ्वी अप् तेज वायु इन चारोंको जो माने तिसकानाम चारवाकहै॥

चारवाक उवाच ।

चौपाई ।

समाचार सुनिए सभदेव । प्रभुकोऽनिखिल बतावो भेव ॥
पाश्चिम देश बसे सुखधाम । सोष्टांग कलि कीन प्रणाम ॥ ७६॥

महामोह उवाच ।

चौपाई ।

चारवाक मम करो बखान । सबविधि है कलिको कल्यान ॥
मम प्रतापमै अति अनुरागी । कलियुग है जगमैं बड़भागी ७७॥

चारवाक उवाच ।

चौपाई ।

तव प्रसाद सबविध कल्यान । तेजवंत जैसे भगवान ॥
कीनेकाज करन नाहिं रहै । तव पदमूल दरसको चहै ॥ ७८॥
तुमरे वाक सु सिरपर धारे । दुष्टनके तिनमूल उखारे ॥
तुम प्रसाद मुदित अति भयो । दरसन सुंदर अतिहरषयो ॥७९॥

दोहा ।

धन्य कालि तव दासहै, करे तुमारे काज ॥
तव पद पंकज वंदना, करे जगतके राज ॥ ८० ॥

महामोह उवाच ।

दोहा ।

चारवाक अतिमित्र मम, मोको करो उचार ॥
कौन कौन कार्यकरे, कलियुग जगतमझार ॥ ८१ ॥

(१) दोपाद । दोजानु । दोहस्त । हृदय । शिर ॥

चारवाक उवाच ।

सवैया ।

वेदनके पथदूर तजे सुयथेष्ट[1] चेष्टमै नरपागे ॥
आज वैरागकी कौन कथा त्रिणलोष्ठ[2] कंचनसें जनलागे ॥
ना कलिना हम कारणहैं, प्रभुके प्रताप भये वडभागे ॥
जो धनवंत महंत महाजन तेरतिनाहकि पांउ परागे ॥ ८२ ॥
दिशिउत्तर औ पुनपाश्चिममै यह वेदत्रई कलि दूर निवारी ॥
दिशि दक्षिण पर्व वेदत्रयी तनपालनकेहित हैं द्विजधारी ॥
सम औ दमकी तह कौनकथा जिह देवसमान भई ग्रहनारी ॥
अवकाज संपूर्ण सिद्धभये, सुविवेकहिकी जड मूलउषारी ८३॥

चौपाई ।

अग्निहोत्र पुन वेद विसाला । औरत्रिदंड[3] भसम पुनभाला ॥
बलमतिहीनजीवकाकारण । धरे बृहस्पतिकीन उचारण॥८४॥
जीवनहित जन वेदविचारे । ताते कारज भये हमारे ॥
कुरुक्षेत्रादि तीरथके माही । प्रबोध उदे स्वप्नेहूं नाही ॥ ८५ ॥

महामोह उवाच ॥

चौपाई ।

चारवाक कलिमहा प्रवीन । मम हित भुजबल धरे नवीन ॥
ताभुजदंडकाज मम सरे । तीरथबडे व्यर्थ तिनकरे ॥ ८६ ॥
अब मोको निह चिंताभई । तीरथबोध संक उर गई ॥
ग्रहमहि नारि सुतनके संगा । कहाहोइ तह बोधप्रसंगा ॥ ८७ ॥

(१) परस्त्रीगमन मद्यपानादिरूप अविहित चेष्टामें नर प्राप्तहै । (२) मृतका पिण्ड । (३) मन काय । वाणिरूप ॥

चारवाक उवाच ॥

दोहा।

तव पदपंकजको लिखी, कलियुग पातीआप ॥
याको आप बचाइये, राजन रविप्रताप ॥ ८८ ॥

चौपाई।

याविधिसुन्योभूपति जबही। पातीलगो बचावन तबही ॥
वाचक कहे सुनो जगभूपा। कलियुगपाती लिखी अनूपा ८९॥

कलियुग उवाच ॥

दोहा।

तव बसकीनो निखलजग, सुरनरमुनीमहान ॥
कलियुग पद बन्दनकरे, महामोह भगवान ॥ ९० ॥
समाचार सभदेशको, सुनो जगतसिरताज ॥
तव प्रताप तव दासजग, एहु करे सभकाज ॥ ९१ ॥

छप्पयछन्द ॥

जग तजेनमायामोहनाम अतीत कहावैं ॥
घरमैं लेहिकुसीद भीष पुन मागन जावैं ॥
रैनकरें रसभोग दिने तन भसमलगावैं ॥
आपकरें सभपाप और को धर्म बतावैं ॥
इहभांतिअतीतसुमै करे नखशिषलौअभिमानअति-
उर निसबासर दमडाचहैं कबहूंन होवै रामरति ॥ ९२ ॥
हरिकोपंथ सुदूर पंथ, बहु आपचलावैं ॥
रही फकीरी दूर मांगपुर पेटअघावैं ॥

(१) ब्याज ॥

कह इकंत वनवास संगवहु दुंदंभवावैं ॥
सवैं निरंतर रातिदिने पुन ध्यानलगावैं ॥
पुनधनमद मसीमलानमुख भूपसौध पुरपौलँपर ॥
धनलिपसों व्याकुलमहा शरमापतिसभरहेपर ॥ १३ ॥
नीतिनिपुण नहिभूपन्याय मन उक्तविचारें ॥
निजप्रजापर दंडकाज भवभीतर सारें ॥
राजधर्मकी स्मृतिभूपननैन निहारें ॥
पाँनाशक्त निरंतरधर्म न चीत सुधारें ॥
जग प्रावंडवाक पुराणविन, वैठन्यायभूपतिकरें ॥
राजाधिराजमहामोह प्रभुभद्र सदापश्चमधरें ॥ १४ ॥
भयो उपद्रव एक सुनो नीके मनलाई ॥
वहुनाम नारायणमांहि प्रतीत सुजनकोआई ॥
कहुंकहूं मनलाइ महाजन प्रेमलगाई ॥
प्रातिभजें हरिनाम नैनते नींद मिटाई ॥
यह हरिभक्ति सुवीज प्रभुजनखोटे उरपरधरें ॥
यहभूपआवाचनकहिसकोंतवमूलगुप्तक्रिंतनकरें ॥१५॥
चारवाकसभ और वातप्रभु सुखो वखाने ॥
महाराज नहिजूठगहैं उरसत्य पछाने ॥
एक पापिनी नारि भई वहु मंत्र सुजाने ॥
यह नाम नारायण दुष्ट ताहिके संग मिलाने ॥

(१) दुंदभीवाजा। (२) श्याही। (३) देहली। (४) मद्यपान। (५) पुराण कहिये पुरातन तथा न्यायके वेत्ता जो प्राड्विवाक कहिये वकीलहैं तिनसें विना राजे वैठकर न्यायकरतेहैं यह भावहै। (६) नाश ॥

प्रभुअपराधनीतें डरें महायोगिनी प्रबलअति ॥
जगचारवाकके वचन सुनि, करो उपाय सु यथामति९६

महामोह उवाच॥

छप्पयछन्द।

अब कलिकी मतिबौरानी यों हम जानिओ ॥
लघु नाम नारायणमात्र जिन डरमानिओ ॥
इह राजसूयकोकरणो याजग भानिओ ॥
अश्वमेध मख मौलकऱ्यो जगहानिओ ॥
इह ब्रह्महत्या मातवध परपतिनी गुरुदाररति ॥
अबकरेंनिडरजगमांहिजनडरनाम नारायणभयोकत

कुबुद्धिमंत्रि उवाच ॥

छप्पय।

नाम नारायण महादुष्ट भूपति जगगायो ॥
अजामेल इकबार लयो तिन बंध मिटायो ॥
गनिकातें पददासीतां मनतें मतलायो ॥
नामदुष्ट तिह मिल्यो सुतिह वैकुंठ पठायो ॥
सुगजपति व्याकुल बारइक नाम नारायण लयो जब ॥
राजाधिराज महामोह प्रभुताहि छडायो विष्णुतब॥९८॥

महामोह उवाच ॥

नाम कुबुद्धि तेरो बडो सुबुद्धि पछाने ॥
जननी नाम कुबुद्धि धऱ्यो मृतते डरमाने ॥
तेयह निखल सुवचनमोहि प्राति सत्यबखाने ॥
नाम नारायण नीच चहे जगमेरोहाने ॥

(१) गाली मदानहै ॥

अबताहि बिनासनहेत कछु होइ उपाय सुप्रगटकारि ॥
कुत्संत विपारप्रभुनिखलजन पठोभजें कहनाम हरि ९९
धनी धर्म धन दान न रंचक मनमैं आने ॥
निरधन भजे न नाम दानहित उद्यम ठाने ॥
धार फकीरीभेस मूढ़ कृतार्थ माने ॥
बिनुसंतोष श्वानवृत्ति आप उत्तमकर जाने ॥
इह तरुणअवस्थामाहि जनतजे विषे सुउपरति अति ॥
पुनि उभैभ्रष्ट जरठापने धनसुतदारा विषेरति ॥१००॥

कवि रुवाच ॥

दोहा ।

याअवसर इकआइयो, पत्रहस्त नरआन ॥
महामोहभूपालको, जयजयकीन बखान ॥ १०१ ॥
उत्तर दिशाते आइयो, अनाचार प्रतिहार ॥
यह प्रभुपत्रपठाइयो, लीजे आपविचार ॥ १०२ ॥
सुनकर पत्र सुपठनहित, प्रेर्योताहि सुआन ॥
बहुपातीपठनंलगो, सुनो प्रभु देकान ॥ १०३ ॥

अनाचार उवाच ॥

छप्पय छन्द ।

उत्तरके सभ लोक करे, मैशिलापरायण ॥
समुझे ईशनतत्त्वबकै, मुखसैल नारायण ॥
नारिधर्मतेहीनभई बहुधा गिरडाइण ॥
कहांधरमकीकथारसें, व्यभिचार रसाइण ॥

(१) चोटा । (२) अनाचारसूबेका दूत ॥

प्रभइत उत्तरदेशते, अनाचार बन्दनकरें ॥
यम अचौरता विनाप्रभ, भद्र सदामनमें धरें॥१०४॥

चारवाक उवाच ॥

चौपाई।

और सुएक बेनती अहे। चारवाक संकत नहिकहे ॥
तुम भवपातिसभकेसिरदारा। तुमरेरचे निखल संसारा॥१०५॥

महामोह उवाच ॥

कौनबेनती नहींसंकावो। चारवाक तुम प्रगट सुनावो ॥
तुम मेरे अतिसै हितकारी। तुमको कहाभयो डर भारी १०६

चारवाक उवाच ॥

चौपाई।

विष्णुभक्ति नाम इकहैये। महाप्रभाव योगिनी पैये ॥
कलियुगविरणप्रचारसुकीनी। तदपि अहै वलबुद्धि प्रबीनी १०७
ताऽनुग्रह नर वंस उदारे। हमसेंकीटनासकेनिहारे ॥
देव सदा रहीयो सवधाना। विष्णुभक्तिहै येवलवाना ॥१०८
एकवार जहँ पाद टिकावे। मरे न मूलन बहुरपलावे ॥
ताहि विराग तहां सुविवेका। सनेसने दिढबांधे टेका ॥१०९॥

कवि रुवाच ॥

महामोह यह सुनियो जवही। अतिभय भयो सुमनमै तवही ॥
मनहींमै यह गटीसुहोई। महाप्रभाव योगिनी सोई ११०॥

---

(१) तिसाविष्णुभक्तिकर अनुग्रीतहै वस जिसका ऐसै उदारपुरुषको हमोरेजैसेकीट देखिनहींसक्ते तौ साक्षातविष्णुभक्तिकेभक्तको देखनातौ दूरहै यह भावहै ॥

दोहा ।

सदा द्वेष हमसों करे, मारी मरेन सोइ ॥
सनेसने हमको हने, महापापिनी जोइ ॥ १११ ॥

दोहा ।

महामोह यों मन डरयो, प्रगट कहे कछु और ॥
गुलाबसिंह योंहीभने, मान तजे सिरमौर ॥ ११२ ॥

महा मोह उवाच ॥

कवित्त ।

कहां भई संक निसंक चारवाककहो
कामक्रोधआदिवीर ताहिको निवारहैं ॥
कामके भयेविकार भक्तिको विचार कहां
होइगीनउदेकहूं वेदयों उचारहैं ॥
वैरीहोइ छोटोतौ मोटोकर जाने बुद्धिजामत
बबूलकोसुमूलते उपारहैं ॥
जीवनकेहेत वलबुद्धिके निकेतजेई
भूपति सचेतसु उपाइको विचारहैं ॥११३ ॥

दोहा ।

लघुअरिअवसर पाइक, दुःखदाइक अवनीस ॥
अहिंकंटक पगमै गडे, पीडादे नखसीस ॥ ११४ ॥

(१) सर्पकाकांटा ॥

कवि रुवाच ॥

चौपाई।

महामोह तब ऊंच पुकारा। हैरेको मम भवन द्वारा ॥
द्वारपाल इतने चलि आया। आज्ञाकरो देव जगराया॥११५॥

महामोह उवाच ॥

चौपाई।

काम क्रोध लोभ मद मतसर। सूर नही जिनके को समसर ॥
तिनको आयसु यों ममदीजे। विष्णुभक्तिको हिंसनकीजे११६॥
द्वारपाल तब शीश निवाए। ज्योंप्रभुकहो करोतिमजाए ॥
इमकहि द्वारपाल जबगयो। पत्रहस्त नरआवत भयो॥११७॥

पत्रीहार उवाच ॥

चौपाई।

उर्तेकल देशहिते हम आए। प्रभुपदपंकजपास पठाए ॥
तहपुरुषोत्तेमको अस्थाना। सागरतट जँहहै मदमाना११८॥
यहहै वनारस जह जगराया। जाकोकुल बहु भांति सुहाया ॥
कीन प्रवेशन लाइ सवेरा। दूरहिते तिन भूपति हेरा ११९॥
यह भूपति कछु मंत्र बिचारे। चारवाकसो बैठ किनारे ॥
चलों समीप सुपत्र दिखाऊं। कारज वेगनबेर लगाऊं॥१२०॥
गयो समीप सुपत्र दिखायो। जयजय शब्द सुसुखो अलायो॥
मदमानपद चंद चकोरे। पत्रलिख्यो पढियो प्रभुमोरे१२१
सुनिकर मोहभयोनिजलीनाँ। है कछु दुःकर भयो मलीना ॥
चारवाकप्रति एहु अलाई। अव नहिवने सुबेर लगाई१२२॥

(१) उडीआदेश। (२) जगन्नाथस्वामी। (३) अपनेस्वरूपमेमूर्छासा होयगया ॥

जातै कारजहोइ नहानी। चारवाक रहियो सवधानी ॥
चारवाकमुख तथा अलाई। गयो वेग भूपति सिरनाई १२३॥

दोहा।

महामोह तव पत्रको, वैठ पढ़ावे आप ॥
गुलाबसिंह याजगतमैं, जिहछायो प्रताप ॥ १२४ ॥

मदमान उवाच ॥

छपप्य छन्द।

स्वस्ति बनारसधाम विषे पदपंकज सुहाए ॥
जीत सदा ब्रह्मंडपरे सुरनरमुनिपाए ॥
सदाऽधीन धनवंत द्रेषिगनवनहिपठाए ॥
अडिग सिंहासनवैठ शीसपर छत्र फिराए ॥
राजाधिराज महामोहपद मदमान वंदनकरें ॥
प्रभु इत पुरुषोत्तम आयतनभद्र सदामनमें धरें ॥१२५॥
और बेनती नाथ सुनो नीके मनलाई ॥
श्रद्धामातसमेत शांतिदूति सुबुलाई ॥
दयोविवेक सुमान श्रुतिके पासपठाई ॥
ज्योंत्योंकरो संबोध मोहि सँगदेहु मिलाई ॥
प्रभु वहदिनरैन संबोधकर जिह किंह विधढिगआनहै ॥
बल इतपुरुषोत्तमआयतनपत्रपठे मदमानहै ॥१२६॥
और कहें विरतांत नाथ नीके मनधारो ॥
काम सहित जो धरमकहूं कहिहोतन्यारो ॥
विराग विवेक सुगूढ मनो कछु मंत्र हढायो ॥
कहूंकहूं हरिहेतहोत हमहूं लखपायो ॥

(१) बुलायकर ॥

यामैप्रमाण प्रभु आपतुम जानेभले मनमाहिधरो ॥
प्रभु जिहविध मिटे अरातिगन सोउपायशीघरकरो १२७

महामोह उवाच ॥

छप्पय छन्द ।

महामूढ बहुभये शांतिते जिन डरकीनो ॥
कहांहोइगी शांतिभयोजग कार्यलीनो ॥
ब्रह्मा निसदिन करे पुनःपुन जगतनवीनो ॥
दक्षमखविनाशक शंभु रहे गौरी सुखभीनो ॥
कमलांकपोलमकरीलिखतउर हरिपयोनिधिशैनकर ॥
पुन और जगतके जीवमैंशांतिकहाकहहोइडर ॥१२८॥

महामोह उवाच पुरुषप्रति ॥

सवैया ।

जालम जाह सितावअबै ममकामको एहु संदेसह दीजे ॥
धर्मविहीनभयो हमसों इनको क्षणनाहि बिसाहु सुकीजे ॥
जिहभांति भजेन मतो हरिको तिमयाहिभले दृढवंधगहीजे ॥
मूल इहै दृढ याहि गहो बस याहिभये नकछू मम छीजे १२९

दोहा ।

भूपमौलमणि जो कहो, देवकरों बहु जाइ ॥
ऐसै पुरुषबखानकै, गयो बेग सिरनाइ ॥ १३० ॥

---

(१) अर्थयहः—अन्तःकरणमेंमहामोह तथाधर्मदोनोरहतेहैं याते धर्मकी निष्कामताकेज्ञानमें आपप्रमाणहो अर्थात् आपजानतेहो। (२) लक्ष्मीके कपोलकहिये गण्डस्थलमें मकरीकहिये मत्स्यकी आकृतिकीन्याई पत्रलेखा (रेखा) कार चिह्नतहै उरस्थलजिसको ऐसाजोहरि। (३) दूत विनाविचारसें कार्यकरनेवालेका नामजाल्महै ॥

चौपाई।

महामोह पुन चिंतनकरहै। कौनउपाय शांति जगमरहै॥
अथवा और उपाइन कैये। असंतनसंग सुवोलमंगैये १२१॥
क्रोधलोभलो मम भट जेते। वेगवुलयै सगलेतेते॥
जिम भुकहें वने तिमकयो। ऐसेभाष पुरुष इक गयो॥१२२॥

दोहा।

क्रोधलोभ दोनों तवै, आए सभामझार॥
गुलाबसिंहनृपवंदपद, लागेकरन उचार॥ १२३॥

क्रोधउवाच॥

सवैया।

प्रभु मोहिसुनीयहवात कहें, तुम्हरे सँगशांति विरोधकमाए॥
श्रधा हरिकी पुन भक्ति तथा, तिनकी यह दोनभई सुसहाए॥
ममजीवत शांतिकी वाति कहां. यहचाहतीतीनहुप्राणगवाँए॥
भुजकोवल नाथ कहांकहिये,कछुभाषतहो सुसुनो मनलाए॥
अंधकरों दृगवंतनको श्रुतिवंतनकोंवधरोंकरडारों॥
धृतवंतनकोंसुअधीरकरों, पुन चातरकी मति दूर निवारों॥
हितकार्य नाहिपिखे कवही,जिनके उर भीतरमै पगधारों॥
हितआत्मको नसुने कवहीपव्यो,जितनो क्षणमाहि विसारो॥

लोभ उवाच॥

सवैया।

जिनके सिरऊपर हाथ धरों तिनकी सुदशा सुन मीत बतावें॥
सुमनोरथकी सरिता परकूलहि नाहि कदाचित तेनर पावें॥

तिनके उर अंतर शांति कहां, नरजो धनको दिनरैनहि ध्यावै॥
अब क्रोधसखे सुनिये सुकहों जिह भांतिनतेधनमैमनलावै ॥
इह मत्तगयंद सुझूलतहैंमम एहुतुरंगम भौनसुहाए ॥
लिखपत्र सुभूपतिमोहिदयो, धनल्यावोंऔर बंगालहिजाए॥
इहगांउदयेकछुऔरकहे नरजे इह भांति सुचीतचध्याए ॥
तिनके उरशांतिकीकौनकथा, इमचिंततही जगमाहिबुढाए॥

क्रोध उवाच ॥

मोहि प्रभाव सुमीत सुनोममसंगहते जन एहुकमाए ॥
तुष्टाद्विजपूंत हने मघवा शिव शीश बिरंचिकेकाटबगाए ॥
वाहजमारसुश्रोणतमैंभृगुनंदनआपभलीबिधनाए ॥
सुवसिष्ठ मुनीश्वरके सुतजे मुनिकौ शिक आप सुताहिंहताए॥

दोहा।

विद्याकीरतिवंत पुन, सदाचार दातार ॥
मेपदके प्रताप नर, क्षणमै भजे विकार ॥ १३९ ॥

लोभ उवाच ॥

चौपाई।

तृश्ने आउबेग इतओरा। मेरो बैनसुनो श्रुतभोरा ॥
तृश्नावैठ समीप उचारे। आज्ञाकरो सुप्राणप्यारे ॥१४०॥
लोभ कहे सुनप्राणप्यारी। क्षेत्रग्राम पुन नगरउदारी ॥
पुर अरु दीप भूमिको चहे। आशापाश जिनके मनगहे ॥
तिनपर कृपासु ऐसीकरियो। ब्रह्मांडलापनहतामन ...
तृष्णे जांउर चरन टिकेहैं। शांतिकहा जगतेनर ...

(१) वार्ता। (२) वृत्रासुर। (३) विश्वामित्र। देख...

तृष्णोवाच ॥

दोहा।

आर्यसुतमै आपहीं, सदाचहों सभभौन ॥
अवआयसु तुमरीभई, मम तृप्तावै कौन ॥ १४३ ॥
ब्रह्मांडकोटको पाइ नरमें उर संगति होइ ॥
मेरो उदर नपूरई, तामहि शांति नकोइ ॥ १४४ ॥

क्रोध उवाच ॥

चौपाई।

हिंसेआउ तूंइत मम ओरा। भाषत बैन सुनो तुममोरा ॥
इतनेमे हिंसाढिग आई। आर्य्यसुत मम देहुवताई १४५॥
तूंमम धर्मचारणीनार । यहतव संगतिको उपकार ॥
मातपितादिक वधहै जोई। करें सुषेन डरें नहिकोई॥१४६॥

सवैया।

कौन पिसाचनी मात अहे पुन कौन सुमकंड तात हमारे ॥
भ्रातसभे ममकीट समा, अव वाधव पुंज वने सभमारे ॥
जातें जये खलहै सभही, इमवोलतहैं जनकीस पुकारे ॥
मीज दोऊकर क्रोधवली,कविसिंहगुलावसु एहुउचारे॥१४७॥

नराज छन्द।

सुगर्भलौंइनेकुलं समस्तआज मारहों ॥
युवासुवाल वृद्धलौं, नएकको उवारहों ॥

---

(१) मेरे वचनके करनेवाली। (२) तेरे संगतिसें जीवको यह उपकार होनाचाहिये। (३) मकडनाम पक्षवालेजीवविशेषकाहै तथापि शाचकाहै तथा पाखंडीकाहै तथा कंजर (वेश्यासंबन्धी पुरुष) का है यह मसंगसैं जान लेना। (४) जितनेउत्पन्नभयेहैं ॥

समस्तभूमिके विषे नयाहिकोठराइहै ॥
सुक्रोधज्वाल नैनकी, विरामतो सुपाइहै ॥ १४८ ॥

कवि रुवाच ॥

दोहा ।

हिंसा तृष्णा क्रोध पुन, लोभ मिले यह चार ॥
जाइ समीप सुमोहके, जयजय कीन उचार ॥ १४९ ॥

महामोह उवाच ॥

दोहा ।

श्रद्धापुत्रि शांतिहै, हमसंग वैरकमाइ ॥
तुम तिह ल्यावो बांधिकै, आयसु मेरी पाइ ॥ १५० ॥
श्रद्धापुत्रीबंधहित, गए माननृप वैन ॥
गुलाबसिंह साचीकहे, भयो अखांडेचैन ॥ १५१ ॥

चौपाई ।

महामोह पुनकीन विचारी । श्रद्धापुत्री शांति बिचारी ॥
तानिग्रहको और उपाइ । सोमेरे उर भास्यो आइ॥१५२॥
शांतिमातश्रद्धाहै जोई । रहेपरतंतर सदा सुसोई ॥
उपनिषतविषे श्रद्धा नरजेती । प्रथम हटैयेसगली तेती॥१५३॥
मातवियुक्त जबै बहु होई । मरे शांति क्षणभीतरसोई ॥
श्रद्धाबेग हटावनकाज । मिथ्यादृष्टि बुलैये आज॥१५४॥
इतउत भूपति दृष्टिपसारी । विभ्रमवती सुताहिनिहारी ॥
विभ्रमवती प्यारी जैये । मिथ्यादृष्टिसुबोललिअैये१५५॥

---

(१) माधीन ॥

विभ्रमावत्युवाच ॥

देवकरीजो आयसुमोको । मिथ्यादृष्टिमिलावों तोको ॥
इमकहि त्याग आखाडोगई । मिथ्यादृष्टिसहित पुन अई १५६॥

अथ प्रश्नउत्तर मिथ्यादृष्टिविभ्रमवतीका ॥

मिथ्यादृष्टि रुवाच ॥

चौपाई।

पेषबहुदिनभये वितीत । निकटिजात लाजत मम चीत ॥
महाराज उपलंभनकरे । ताते चीत सखी ममडरे ॥१५७॥

विभ्रमावत्युवाच ॥

सखी तोहिमुखकंज निहारे । तोभूपति निज आप सँभारे ॥
तूं वाको है अतिसै प्यारी । ताते डरो न चीत मझारी १५८॥

मिथ्यादृष्टि रुवाच ॥

सखीअलीकसुभागहमारा । काहेको तें वहुत उचारा ॥
भूपति मोमै चीत नधरई । तुं ममकाहि वडंवन करई १५९॥

विभ्रमावत्युवाच ॥

सखी अलीक सुभाग हमारे । अवही तूं निजनैन निहारे ॥
तेरो तनु जव भूप निहारे । तोमै रमैं न और चितारे १६०॥
और सखी इक वातिउचारों । घूमतनैनसु तोहि निहारों ॥
कारण कौन न निद्रा कीनी । घूमतनैन सखी रसभीनी॥१६१॥

मिथ्यादृष्टि रुवाच ॥

एकपतीकी जो वहुप्यारी । तिनके नींद न नैनमझारी ॥
मोको सगललोक जग गहें । नींद नैन मम किहविधि लहें १६२

विभ्रमवत्युवाच ॥

दोहा ।

सखी प्यारी लोक बहु, मोकों करो उचार ॥
जे तोकों निशिदिन भजे, जासो करें प्यार ॥ १६३ ॥

मिथ्यादृष्टि रुवाच ॥

चौपाई ।

सखी मोह मम नाह पछानो । काम क्रोध लोभ पुन जानो ॥
अथवा सुनो तत्त्व निजसार । एक एक कहि करों उचार॥ १६४॥
याकुलभीतर जेनृप जाए । मोहिबिषे सगले मन लाए ॥
बालक बृद्ध युवा पुनि जेई । मोबिन रहे न निशिदिन तेई १६५

कवि रुवाच ॥

दोहा ।

काम क्रोध पुनि लोभ यह, गुलाबसिंह मदमान ॥
तनमे आत्मदृष्टि बिन, होत नहीं पहिचान ॥ १६६ ॥

विभ्रमवत्युवाच ॥

चौपाई ।

कामहिकी रति परमप्यारी । हिंसा क्रोधकी सुनी सुनारी ॥
तृष्णा लोभहिकी जग गैहै । याविध नारि सुऔर बतैहैं॥ १६७॥

दोहा ।

तूंसभके पतिसों रमहि, इहै बतावो मोहि ॥
तेचुपकी क्यों होइरही, करे न ईर्षा तोहि ॥ १६८ ॥

---

(१) शरीरमे आत्मबुद्धिविना इनकी प्रतीति होवै नहीं किंतु शरीरमें आत्मबुद्धिसे ही इनकी प्रतीति होवैहै ॥

मिथ्यादृष्टि रुवाच ॥

चौपाई।

कैसे सखी ईर्षा करई । मोहि विन प्राणनते क्षण धरई ॥
रति हिंसा तृष्णालौं जेती । मेरो भलो मनावें तेती ॥ १६९॥

कवि रुवाच ॥

दोहा।

मिथ्यादृष्टि सुमरे जब, गुलाब सिंह इम जान ॥
हिंसा तृष्णा आदिलै, होइ सगल पुन हान ॥ १७० ॥

विभ्रमवती उवाच ॥

चौपाइ।

याहिते सखी मोहि वखानी । तोसम सुभग न दूसरी रानी ॥
तोहि सुभाग जबै बहु लहे । ते गतिरूपप्रसादहि चहे ॥ १७१॥

सवैया।

सखि औरकहों निशिनींदविना जुगनैन सरोजसुतेंअकुलाए॥
घुंगनूपरकी धुनि चीतहरे परभूमिविषे पदते खिसलाए॥
गजगामनि तूं गति मंद चले उर चाहतहैं निजनाह रिझाए॥
इह लक्षण जो तव नाह पिखे डरहों उर संककरे खुनसाए१७२

मिथ्यादृष्टि रुवाच ॥

सवैया।

सखि काहेतसंकभई तुमको हम नाहिकीआयसमेंसुखपाए॥
इक और कहों सुनमोहि अली जिहतेसगलोडरतोहिमिटाए॥

---

(१) मिथ्या जो देहइंद्रियां अन्तःकरण इनमें जो दृष्टि कहिये इनमें जो आत्माका तादात्म्याभिमान मरे कहिये निवृत्तहोवै जब तब। (२) स्वस्थानसे भ्रष्टहोतेहैं ॥

युवती मुख चंद निहारतहीं नरचित्तचकोर महा हरपाए ॥
दृगकंज फिराइ पिखे युवती कहितां गतिजो नरता खुनसाए॥

दोहा।

इम भाषत दोनों चली, आवत मोह निहार ॥
देवी मिथ्यादृष्टियहि, ऐसे कीन उचार ॥ १७४ ॥

सवैया।

कदलीसमजंघ विरंचि रची, पुनफूलनमाल सुकंठसुहाए ॥
कर चंचलचीर उभारत है, कुचमंडल चन्दन लेपलगाए ॥
जनु नीलसरोज वनीअँखियाँ, पिख दीर्घमें मनको तृताए॥
कर डोलत कंकण बोलतहैं, धुनि नूपरकामसिखीहरपाए १७५
मुख चन्दसरोज मनो अँखियाँ द्युतिदाडमदंतनहेर लजाई ॥
जग कामनिदाघतपे जन जे दृगसिंचसुधातिनताप मिटाई ॥
नभचन्द कलाजन भूमिआई इन पेखनते मनमें विगसाई ॥
सुगुलावपिखमधुमूरातिसी मलमूत्रता नहिदेत दिखाई॥ १७६॥

विभ्रमवत्युवाच ॥

दोहा।

यहमहामोह सुप्राणपति, तूं अति प्यारी नारि ॥
चलो समीप प्रसन्नकर, भाष्यो मान हमार ॥ १७७ ॥
सुनिके मिथ्यादृष्टितब, जाइ समीप निहार ॥
महामोह महाराजप्रति, जयजय कीनउचार ॥ १७८ ॥

(१) उठावतीहै। (२) ग्रीष्मऋतु ॥

महामोह उवाच ॥

दोहा।

पीनउरू कुच अंकामिल, कीजे मोहि निहाल ॥
हरणाक्षि शिवशिवाकी, शोभा हरो विसाल ॥ १७९ ॥
हसी सुमिथ्यादृष्टि तव, मिली सुभुजा पसार ॥
महामोह सुखताहिको, निजमुखकरे उचार ॥ १८० ॥
अहोप्यारी संग तव, लयो रसायन सार ॥
जराइकाग्रमेटि पुन, यौवन भयो उदार ॥ १८१ ॥

सवैया।

पूर्वजो नव जोवनमें, सुमनोजविकार भयो वलकारी ॥
चीत मत्थेउर आनंदथे सभ औरपदार्थ थे सुखकारी
चीत इकागर ताजरठापनते सुखचन्दअमी सुनिवारी ॥
संगमते नवजोवनमें, अव फेर भयोतव प्रेम उदारी ॥ १८२ ॥

कवि रुवाच ॥

दोहा।

तरनापन तज विषय सुख, वहु दिन भजे मुरार ॥
जरठापनविन भागसठ, युवती मदनविकार ॥ १८३ ॥

मिथ्यादृष्टि रुवाच ॥

सवैया।

महाराज कहों इकवात सुनो जिह ऊपरहोत कृपाल पियो ॥
जग पूरन ताहि मनोरथहै कछु चाहत नावहु औरवियो ॥

(१) याकाभावयहहैः—उमा महादेवकी न्याई हम तुम दोनो निर्वाध निर्भय स्थितहोवें ॥

नव जोवनते संग मोहि लयो विनसेवनते किह काम जियो ॥
करुआयसुवेगकरों भरतामम जाहि निमित्तसुयादकियो १८४

महामोह उवाच ॥

तोहि चितारतहैं निशिवासर वामउरू सुनि मोहि प्यारी ॥
मांहिदिवार यथा पुतली तिम नीत वसो मम चीत मझारी ॥
चीतविपे तव प्रेम रहो मम नीतखिरे सुमनोजकी वारी ॥
सुन मिथ्यादृष्टि प्रसन्नभई, सुप्रसादकियो मुख एहु उचारी १८५

महामोह उवाच ॥

दोहा।

औरकहों दासी सुता, श्रद्धा शांति सुजान ॥
दूतीभई विवेककी, पत्रलिखे मदमान ॥ १८६ ॥
उपनिपत विवेक मिलापहित, भई कुट्टणी सोइ ॥
जिहविध होइ मिलाप नहिं, करो उपाय सुसोइ ॥१८७॥
एक उपाय सुमैंकहों, वही करो मनधार ॥
श्रद्धा जो उपनिपतकी, सो अव देहु निवार ॥ १८८ ॥
अकुलीनी प्रतिकूल मम, श्रद्धा पापिन नारि ॥
केशनते गहि ताहिको, देहु पखंड मतडारि ॥ १८९ ॥

मिथ्यादृष्टि उवाच ॥

चौपाई।

याहिकाजकी चिंत न कीजे । मम वचननते भयो पिखीजे ॥
मेरा वचन सुने जव रँडी । तजे वेदपथ भजे पखंडी ॥ १९० ॥

---

(१) जीवना । (२) मेरी दासीकी सुता यह गाली मदान है। (३) स्त्रीपुरुषके मिलाप करावनेवालीका नाम कुट्टनी है। (४) नियामकरहित ॥

मेरो जीवन जवलग होई। बसै परखंड ग्रहते पदंधोई ॥
मिथ्याधर्म मिथ्यामुक्ति। मिथ्यावेद मिथ्यायुक्ति ॥ १९१ ॥

दोहा।

याविधि मेरो वचन सुनि, तजे वेदपथसोइ ॥
जनवेदन श्रद्धा मिटे, कहि उपनिषदमें होइ ॥ १९२ ॥

सवैया।

जह खाननपाननती सुखहै बहु मोक्ष कहो कत आवत कामा॥
परलोक नहीं सुखहोइ कहां उलटे सुत नारि तजावत धामा॥
जगबंचनके हित ब्योंतरची जन धूरंत वेद धरे तिह नामा॥
श्रद्धा सुन यों पथ वेद तजे सुपखंडनके वसहै बहु वामा १९३॥

महामोह उवाच ॥

चौपाई।

ऐसै करें पिआरी जवही। मेरो इष्ट सिद्धजग तवही ॥
इम कहि प्रेम भयो अधिकाई।मुखचूम्यो गहिकंठ लगाई॥१९४॥

मिथ्यादृष्टि रुवाच ॥

चौपाई।

भूपति यह नाहिं रीति सुहैहे। मेरो चीत सुबहुत लजैहै ॥
महामोह तव कीन उचारा। धस्योबनेअब वास अगारा॥१९५॥

दोहा।

ऐसै मुखो वखानके, गयो अखाडो त्याग ॥
पिख भूपति विसमै भयो, गुलाबसिंह वडभाग ॥१९६॥

---

(१) तव पद दासी। (२) मकार वा ठगी वा बनावट। (३)वञ्चकोंने।
(४) वाञ्छितअर्थ ॥

दोहा।

करुणा सखीसमेत पुन, शांति सुशील उदार ॥
जैहै श्रद्धाशोधहित, जगसभ पंथमझार ॥ १९७॥

इति श्रीमन्मानसिंह चरण शिक्षित गुलाबसिंह विरचिते प्रबोधचन्द्रोदय नाटके द्वितीयोऽङ्कः समाप्तः ॥ २ ॥

इति श्रीमदुदासीनवर्य्य परमानंद शिष्य गुरुप्रसादविरचिता प्रबोधचंद्रोदय नाटक द्वितियांऽकटिप्पणिका समाप्ता ॥ २ ॥



ॐ श्रीगणेशाय नमः ।

अथ तृतीयोङ्कप्रारंभः ॥ ३ ॥



दोहा ।

माया जिह जग मोहियो, बहु कुपंथ भरमाइ ॥
वहु रघुनायक दासके, होवै नीत सहाइ ॥ १ ॥
जिहविध कलियुग फैलियो, सकल भ्रमायो लोइ ॥
गुलाबसिंहनृप सभामें, प्रगट दिखावत सोइ ॥ २ ॥

सवैया ।

ते इहभांति गए जवहीं तव शांति तथा करुणा तहँ आई ॥
ऊँच बुलावतहै जननी मम उत्तर देहु कहा मम माई ॥
शांति सुनयननीर बहै कहँ मात गई नहिं देत दिखाई ॥
तो विन जीवन मोहि कहांअव प्राण तजों सुलगे दुखदाई॥३॥
मृगरंजतकाननप्रीतिहुती जल शैलनमें तवप्रीति नई ॥
अति पावन थानन प्रीति हुती तपसा तनमैं लवलीनभई ॥
जिम भौनचंडालन गौकपिला तिम मात परवंडनहाथ गई ॥
अव जीवनमातको होत कहां तनडारइहांयमधामगई ॥ ४॥
विन मोहि पिखे नहिं नावतथी अरु नाहिकछू जननीसुखपाए॥
नहिसोवत मोहिविना कवहीं नहिमोहिविनापथमाहि सिधाए

(१) जैसे सर्वगौओंके मध्यमें कपिला गौ उत्तमहै; तैसे शांत्यादिकोंके मध्यमें श्रद्धा उत्तमहै ॥

श्रद्धाबिन मोहिपिखे मरती, नहिं एक महूरत प्राण रहाए ॥
अब तांबिन जीवन मोहि विडंबन, प्राणबने यमधाम सिधाए५
करुणे सजनी अब शांति मरे, जग तूं मम देहु चिता सुबनाई॥
अब मोहि बिलंब सुहातनहीं, तन देहु हुताशनमांहि जलाई॥
जनचित्त निवासतजोंसजनी, तहँजाउँ जहां सुगई मम माई॥
सुन शांति विलापमहाकरुणा, दृगनीर बह्यो सुलईगललाई६॥

करुणोवाच ॥

सवैया ।

सजनी इह भांति कहे मुख अक्षर,ज्वाल मनो सुदवानलकी॥
तन प्राण बिलातठरातनहीं उरमोहि भयो मछलीथलकी ॥
सुमहूरत प्राण धरो न मरो मुखकंज प्रसन्न नहो हलकी ॥
अब सोध लहे जगमें श्रद्धा, न मुई कछुबात भई कलिकी७॥
इत औ उत पुन अरण्यपिखेमुनिआश्रमजेसुतपोबनमाहीं ॥
तटगोमतिकै यमुना तटमें कि बसी सुभगीरथिकेतटमाहीं॥
कदाचित मोहमहीप डरी, छपिजाइ बसी गिरि कंदरमाहीं ॥
कुरुजांगलकै मखसालनमें श्रद्धा कहूं जाइबसी जगमाहीं ८

शांति रुवाच ॥

दोहा ।

सखी निहारेगी कहां, श्रद्धा कथा न लेश ॥
मैंकुरुक्षेत्र सुगोमती, औरपिखे सभदेश ॥ ९ ॥

---

(१) मोहि पिखे विन श्रद्धा मरती, इस कहनेकर श्रद्धा शांतिकी व्याप्ति प्रतीत होवैहै अर्थात् जहां श्रद्धाहै तहां शांतिहै । (२) अग्नि । (३) वनकी अग्नि । (४) कलिका विडंबन है ॥

सवैया ।

सरितातटमें बहुभांति पिखे तपसी जिनमाहि अनेकसुहाए ॥
पुन मोहि मीमांसकधाम पिखे चमसाकर यूपसुथान बनाए
पुन आश्रम चार निहाररहीदिनकोटिनकोटन जातगिनाए ॥
नाहिंबात सुनी कहुं काननमेंश्रद्धासजनी किहठौरवसाए १०

करुणोवाच ॥

चौपाई ।

सखीकहों श्रद्धाहै जोई । परवंडनके वसपरे नसोई ॥
जे अतिपुण्यवती जगनारी। ते यों विपति न लहे प्यारी ॥११॥

शांति रुवाच ॥

दोहा ।

सखीकहों इकवात सुन, जो धाता प्रतिकूल ॥
कहो असंभव कौनगति, वेसभ अपदा मूल ॥ १२ ॥

सवैया ।

जनकात्मजा गृह रावणके सुबसी दुःखभांति अनेकभरे ॥
वस दानव वेदत्रयी सुभई तिनजाइ रसातल वासकरे ॥
पुन गंधर्वकी दुहिता पतिदैत्य हरी सुमदालस रूपवरे ॥
विधिवासभयेजगमें सजनी कहुआपदकौनन शीशधरे ॥१३

(१) पात्र विशेष । (२) कार्याऽसिद्धिमें क्या आश्चर्यहै । (३) सीता । (४) मदालसा नामक कन्या पातालकेतु नामक दैत्यने हरली यह गाथा तुलसीदास कृतरामायण, तथा श्रीमद्भागवतमें प्रसिद्धहै इसप्रकार श्रद्धाका पाखण्डोके हस्तमें जानेका दैवही मूलहै वेदवाह्यकानाम पाखण्डहै ।

दोहा।

तातैं चलें पखंड ग्रह श्रद्धा तहां जिहोइ ॥
करुणाकह्यो सुचलु सखी, इमकहि चाली दोइ ॥ १४ ॥

सवैया।

करुणा तह अग्रबिलोक डरी सजनी मम राक्षसनैन निहारे॥
पुनि शांति कह्यो कहि राक्षसहै करुणा तब पीठहिपीठउचारे॥
मलपंक गिरे मुखदंतनते तनमें दुरगंध भयानक भारे॥
मुक्ताकंटिकच्छ मलीन महा इहमूंडेपिसंग सुझंड खिलारे१५॥

दोहा।

पूंछ सिखंडसुकरविषे, आवतहै इतओर॥
नैन निहार न मैं सकों, चित्त डरतहै मोर॥१६॥
शांतिकह्यो राक्षसनहीं, पुर्दगलहै बलहीन॥
करुणा कहे सुकौन पुन, ऐसो परम मलीन॥ १७॥
शांति कह्यो सुपिशाच यह, ऐसे मेमन आइ॥
करुणा कहे पिशाचनाहिं, वहु निसमें प्रगटाइ॥ १८॥
सूर्य आहि आकाशमें, किरणप्रकाशे लोइ॥
ऐसेसमै पिशाचका, कहिअवकाश सुहोइ॥ १९॥
शांति कह्योसुपिशाचनाहिं, तो यह पापी आहि॥
निकस्यो अवही नरकते, आवतहै पथमाहि॥ २०॥

(१) खुलावस्त्र कटिमें कच्छाहै लगाया है। (२) मस्तकमें भूसररंगकी जटा सरीखी। (३) मोरछल। (४) (पुद्गलं वपुरात्मनः) अर्थयहः—आत्माके शरीरका नाम पुद्गलहै यह कोषमें कहाहै, याते बलहीन कोई पुरुष है॥

बहुरोशांति विचारकर, अब मैं लखियोनृतांत ॥
महामोह पठ्यो अयो, यह जग जैनं सिद्धांत ॥ २१ ॥
याको दर्शन दूर तज, यह अति पतित मलीन ॥
ऐसे शांति बखान कै, फिर चाली मुखदीन ॥ २२ ॥

करुणोवाच ॥

दोहा ।

सखीमहूरत थिररहो, श्रद्धा लेहि निहार ॥
यही पखंडी भाखिये, मत या भवनमझार ॥ २३ ॥
गुलाब सिंह इम भाषकर, दोनों खरी इकांत ॥
तब नृप सभा प्रवेशकर, बोल्यो जैन सिद्धांत ॥ २४ ॥
नमोनमो अर्हंतपथ, जे जन चले उदार ॥
भुक्तिमुक्ति दोनोंलहै, मैं अब करों उचार ॥ २५ ॥

कवित्त ।

नव है द्वार तन भौनके मझार पुन,
आत्मा प्रकाशदीप ताहिमें सुहाई है ॥
जैन वरभाख्यो सिद्धांतसुइकांत यह,
गहे जनजोई जगसूख मोष पाइहै ॥
अरे सुन श्रावक सुवाकमें बखानो तुम,
मलमय प्रमाणुते सुदेह उपजाइहै ॥
मूढनर शुद्धकरें शीतजल शीशधरें,
होवत न शुद्ध जलकोटन नवाइहै ॥ २६ ॥

(१) दिगम्बर सिद्धान्तशास्त्र। (२) दीपक दृष्टान्तसे आत्मापरिच्छिन्नपरिमाण वाला हुवा । (३) व्यभिचार रहितहै अर्थात् निर्दोषहै । (४) शिष्य ॥

दोहा।

आत्म विमल स्वभाव है, रिषिसेवा तिहज्ञान ॥
रिषि सेवाकैसीकहो, सुनहोकरों बखान ॥ २७ ॥

सवैया।

दूरिहिते पदपंकजको अभिवन्दनशीश निवाइ करो ॥
भोजन जो मिष्टान्न महा नित ताहि जिवावहु जोरकरो ॥
घरभीतर जो रिषि वासकरे, मनमैं नहि रंचक रोष धरो ॥
गोपहुतो मत खोलिकह्यो इहभांति करो भवसिंधुतरो ॥२८॥
पुनि नेपथ्य ओर बिलोकि कह्यो श्रद्धे इतआउ कहां चिरलाए
करुणा तिह शांति निहारतथी; इनपेखत कोन कनात हलाए ॥
श्रद्धा तहँ आइ समाजवरी पुन जैनसमान सुवेस बनाए ॥
कहि आयसु मोहि सुवेगिकरों,सुन शांति दुःखी सुभईमुरझाए२८

क्षपणक उवाच ॥

दोहा।

स्रावग निखिल कुटंबको, श्रद्धे तूं गहि आज॥
कबहुं महूरत नातजी, सिद्धहोइ मम काज ॥३० ॥

दोहा।

जो आयसु सोईकरों, राजकुलीन महान ॥
इम कहि निकसे वै दोऊ, करुणाशांति बखान ॥३१ ॥

करुणोवाच ॥

दोहा।

सखी प्यारी धीरधर, काहेतूं डरपाइ ॥
नाममात्र श्रद्धा कहैं, है कछु और बलाइ ॥ ३२॥

चौपाई

अहिंसा देवी मोहिं सुनाई। परखंडधाम श्रद्धा इक आई ॥
परवहु अंवातेंहै आन । तामस श्रद्धा कहै वखान ॥३३॥

दोहा।

ताते श्रद्धा तामसी, यह तूं क्यों डर पाइ ॥
ऐसे करुणा भाखियो, अव पुन शांतिअलाइ ॥ ३४ ॥

शांति रुवाच ॥

चौपाई।

सावधान सजनी मैं होई । जैसैं कहें बातिहै सोई ॥
यह अतिदुराचारणी है यें। अंवा सदाचार रतिपै ये॥ ३५ ॥
यह दुर दर्शनरूप मलीनी । अंवा प्रियदरशन सुखभीनी ॥
ऐसो रूप ताहि नांहिं होई । संसा मनमें करो न कोई ॥३६॥
अंवा याके वस नहिं होई। जो तूं कहें वात है सोई ॥
चलैं अगारी सौगत धामा। तहाँ मिलै जो वहुअभिरामा ३७
यों कहि चली अगारी जवहा। भिक्षुक एक निहाऱ्यो तव्हीं ॥
पुस्तक हाथविषे दर्शायो । वौद्धसिद्धांत सभामहि आयो ३८

भिक्षुक उवाच ॥

चौपाई।

क्षणभंगुर सकल पदार्थ हैये। है भीतरवाहर समपैये ॥
अहे निरात्ममाहि ज्ञान । दर्पणसम मुख होवै भान ॥३९॥

---

(१) बुद्धशास्त्राऽभिमानिदेवता। (२) घटादिकविषय बुद्धिमें कल्पितहोनेतें अन्तरवर्तिहुएभी भ्रांतिसे वाहरकी न्याई प्रतीत होवै है । अहे निरात्ममाहिं ज्ञान ॥ दर्पणसममुख हेवैभान ॥ याका अन्वय यहहै:—ज्ञानमाहिनिरात्मअहै अर्थात् ज्ञान कहिये बुद्धिरूपआत्मामें प्रवृत्तिविज्ञानधारारूप अनात्मस्थितहै सो आत्मख्यातिसैंवाह्यप्रतीत होवैहै जैसे ग्रीवा स्थितमुखदर्पणमैं भासे है तैसे ॥

सो वहुज्ञान वासना हीन । फुरे विषय विनु लखैप्रवीन ॥
यों कहि पोथी आगे धरी । शीशनिवाइप्रकरमाकरी ॥४०॥
अहो साधु यह धर्म सुहायो । जो निजमुखते बुद्ध बतायो ॥
यामैं सुखमोक्ष जगदोई । खेदविना जनपावे सोई ॥४१॥
सेवकके निज भौनमझारे । सुंदरवास सुमाहि चुवारे ॥
मनअनुकूल बनककी नारी । वहुविध भोजन धरेसवारी४२॥
कोमलसेज सुवणक विछाए । जोर दोऊ कर देइवैठाए ॥
श्रद्धासहित उपासक जेते । युवतीसहित भजे पदतेते ॥ ४३

दोहा ।

अंगराग तनलाइकै, वणक मनोहरनारि ॥
भजे निशाशशिऊजली, पद निजपाणि मझार ॥ ४४ ॥

करुणोवाच ॥

सवैया ।

सजनी यह कौन सुआहिइहा तनुतालसमान सुजाहिलंबायो ॥
सुपिसंगकषाय धरे तन अंवर सूक्ष्मजो धरमै लटकायो ॥
पुन भाल सुकिंचित मुंडतहै किपिखो कचमूलहुते उखडायो ॥
द्रुमछाल विसालसुनाल धरी नयती यह जान परे रसकायो ॥

शांति रुवाच ॥

दोहा ।

वौद्धागम सजनी इहै, भिक्षुक रूपवनाइ ॥
वंचतहै सभलोकको, यों मेरे मनआइ ॥ ४६ ॥

(१) कुङ्कुमचन्दनादिलेप । (२) लाल तथा सुगन्धीवाले वस्त्रधारणकीये हैं ॥

भिक्षुक उवाच ॥

दोहा।

यंतीउपासक औरसभ, सुनो सुनिजानिज कान ॥
वाक सुधारस बंधहर, कहे सुगत भगवान ॥ ४७ ॥
योंकहि पुस्तक लीनकर, खोलि नवायो शीश ॥
गुलाबसिंह पेखत सभे, राजसमाजमहीश ॥ ४८ ॥
दिव्यनैनसभकी पिखो, गति शुभाशुभ दोइ ॥
क्षणभंगुरसभ भाँवहैं, थिर नाहिं आतमँकोइ ॥ ४९ ॥

सवैया।

इमजानत जो सभमोहजितोनिजदारन औरअगारनमाही ॥
भिक्षुकजो घरमाहि रमे तब द्वेप न रंचकरो मनमाही ॥
मन कोमलतो इहभांति मिटे पुन नेपथ्यपेखि कह्योसुखमाही ॥
श्रद्धे इतआउ बिलंबकहा सुप्रवेशाकियो श्रद्धाक्षणमाही ५०

श्रद्धोवाच ॥

दोहा।

देव करो आयसु प्रगट, करों कौन अब काज ॥
मै क्षणमें सोईकरों, तुम सभके सिरताज ॥ ५१ ॥

भिक्षुक उवाच ॥

दोहा।

भिक्षुक सेवक सकलजे, ताको गहि निजहाथ ॥
मोहिमतेअतिथिरकरो, सभे निवावे माथ ॥ ५२ ॥

---

(१) यती नाम साधु तथा सेवक। (२) पदार्थ। (३) बुद्धिस्थितिरहित है ॥

श्रद्धोवाच ॥

जो आयसु सोईकरों, ऐस बखाने बैन ॥
निकसि चले वै सभाते, शांतिनिहारे नैन ॥५३॥

शांति रुवाच ॥

सजनी यहभी तामसी, श्रद्धा जानी मोहि ॥
करुणा कह्यो सुऐंवहै, भली पछानी तोहि ॥ ५४ ॥
याअवसर क्षपणक अये, लाबो डीलसुहाइ ॥
भिक्षुक जातो हेरकै, ऊचेलयो बुलाइ ॥५५॥
रेभिक्षुक इतआउ तुम, कछु पूछो अब तोहिं ॥
तेरी मेधा मैं पिखों, प्रगट बखानो मोहि ॥ ५६ ॥
सुनि भिक्षुक पुनि कोपियो, भाषे वचनकठोर ॥
हापापी मलपंकधर, लेहि परीक्षा मोर ॥ ५७ ॥
क्षपणक कहे सुक्रोध तज, करो बेगि अतिरोध ॥
शास्त्रगति कछु पूँछहों, काहेकरो सुक्रोध ॥ ५८ ॥

भिक्षुक उवाच ॥

क्षपणक तूं कछु जानहै, शास्त्रकथा उदार ॥
भवतु प्रतीत पूछो सुअब, भाखों क्रोधनिवार ॥ ५९ ॥

क्षपणक उवाच ॥

चौपाई।

क्षणभंगुर तव मतआत्मअहै । काहिनिमित्त व्रत्ततुमगहै ॥
याको उत्तर प्रथम उचारो । क्षणक आत्मा किहबिधितारो ६०

(१) अरेक्षपणक शास्त्रमपिवेत्सि । भवतुभातिक्षामस्तावत् उपसृत्यकिंपृच्छसि ॥ यह संस्कृतका पाठहै अर्थ यहः—भवतु कहिये जैसा तू जानताहै तैसा जाणो परंतु मैंभी तेरी परीक्षा करताहूं ऐसे कहिकर भिक्षुक क्षपणकके समीप जायकर कहनेलगा कहुं क्या पूछता है क्रोधरहित होय कर मै तेरेको उत्तर कहताहूं यह दोहाका भावहै ॥

भिक्षुक उवाच ॥

दोहा ।

यतीउपासक औरसभ, सुनो सुनिजनिज कान ॥
वाक सुधारस बंधहर, कहे सुगत भगवान ॥ ४७ ॥
योंकहि पुस्तक लीनकर, खोलि नवायो शीश ॥
गुलावसिंह पेखत सभे, राजसमाजमहीश ॥ ४८ ॥
दिव्यनैनसभकी पिखो, गति शुभाशुभ दोइ ॥
क्षणभंगुरसभ भावहैं, थिर नहिं आतमैंकोइ ॥ ४९ ॥

सवैया ।

इमजानत जो सभमोहजितोनिजदारन औरअगारनमाही ॥
भिक्षुकजो घरमाहि रमे तव द्वेप न रंचकरो मनमाही ॥
मन कोमलतो इहभांति मिटे गुन नेपथ्यपेखि कह्योसुखमाही ॥
श्रद्धे इतआउ विलंवकहा सुप्रवेशाकियो श्रद्धाक्षणमाही ५०

श्रद्धोवाच ॥

दोहा ।

देव करो आयसु प्रगट, करों कौन अव काज ॥
मै क्षणमें सोईकरों, तुम सभके सिरताज ॥ ५१ ॥

भिक्षुक उवाच ॥

दोहा ।

भिक्षुक सेवक सकलजे, ताको गहि निजहाथ ॥
मोहिमतेअतिथिरकरो, सभे निवावे माथ ॥ ५२ ॥

---

(१) यती नाम साधु तथा सेवक । (२) पदार्थ । (३) बुद्धिस्थितिरहित है ॥

श्रद्धोवाच ॥

जो आयसु सोईकरों, ऐस बखाने बैन ॥
निकसि चले वै सभाते, शांतिनिहारे नैन ॥५३॥

शांति रुवाच ॥

सजनी यहभी तामसी, श्रद्धा जानी मोहि ॥
करुणा कह्यो सुऐंवहै, भली पछानी तोहि ॥ ५४ ॥
याअवसर क्षपणक अये, लाबो डीलसुहाइ ॥
भिक्षुक जातो हेरकै, ऊचेलयो बुलाइ ॥ ५५ ॥
रेभिक्षुक इतआउ तुम, कछु पूछो अब तोहिं ॥
तेरी मेधा मैं पिखों, प्रगट बखानो मोहि ॥ ५६ ॥
सुनि भिक्षुक पुनि कोपियो, भाषे वचनकठोर ॥
हापापी मलपंकधर, लेहि परीक्षा मोर ॥ ५७ ॥
क्षपणक कहे सुक्रोध तज, करो बेगि अतिरोध ॥
शास्त्रगति कछु पूँछहों, काहेकरो सुक्रोध ॥ ५८ ॥

भिक्षुक उवाच ॥

क्षपणक तूं कछु जानहै, शास्त्रकथा उदार ॥
भवतु प्रतीत पूछो सुअब, भाखों क्रोधनिवार ॥ ५९ ॥

क्षपणक उवाच ॥

चौपाई।

क्षणभंगुर तव मतआत्मअहै । काहिंनिमित्त व्रत्ततुमगहै ॥
याको उत्तर प्रथम उचारो । क्षणक आत्मा किहविधितारो ६०

(१) अरेक्षपणक शास्त्रमपिवेत्सि । भवतुमातिक्षामस्तावत् उपसृत्यकिंपृच्छसि ॥ यह संस्कृतका पाठहै अर्थ यहः—भवतु कहिये जैसा तू जानताहै तैसा जाणो परंतु मैंभी तेरी परीक्षा करताहूं ऐसे कहिकर भिक्षुक क्षपणकके समीप जायकर कहनेलगा कहुं क्या पूछता है क्रोधरहित होयकर मै तेरेको उत्तर कहताहू यह दोहाका भावहै ॥

भिक्षुक उवाच ॥

अरे अरे अब करों बखान । मेरो मतो सुनो निजकान ॥
विज्ञानलक्षण आत्मैहै जोई । रहे संतान मरे क्षण सोई ॥ ६१ ॥

दोहा ।

अस्मंतपंक्तिपरो पुनः, कश्चित्ज्ञान सुहोइ ॥
नष्टवासना ऊजलो, मुक्ति लहेगो सोइ ॥ ६२ ॥

क्षपणक उवाच ॥

चौपाई ।

सुन मूर्ख जन्मान्तरमाही । जो आत्मको मुक्ति लहाही ॥
तो अब नष्टकलेवर थारा । कौनलाभको तव उपकारा ॥ ६३ ॥
पूछों और सुनो मनलायो । किन तव ऐसो धर्म बतायो ॥
नतु सर्वज्ञ बुद्धहै जोई । ताहि कह्यो यह धर्म सुसोई ६४

दोहा ।

बुद्ध भयो सर्वज्ञजो, कैसे जान्यो तोहि ॥
याको उत्तर होय जो, प्रगट बखानो मोहि ॥ ६५ ॥

भिक्षुक उवाच ॥

चौपाई ।

बुद्ध बनायो आगम जोई । तामें कह्यो सर्वज्ञ सुसोई ॥
तातें तां सर्वज्ञ सुजाने । बुद्धवाक यह प्रगट बखाने ॥ ६६ ॥

---

(१) अस्मतपंक्तिकहिये विज्ञानसंततिमें विज्ञानपरंपरामें कश्चित्कहिय कोई विज्ञानलक्षणपुरुष मात्मज्ञानवाला तथा ऊजऊ तथा वासनारहित हुआ सोई मुक्तिको पावेगा । (२) यदि मन्वन्तर (कालान्तर) में कोई आत्मा मुक्तिको पावेगा तौ अब तेरे शरीरके नष्ट होयां तुमको लाभ उपकार करेगा न कछुभी करेगा यह चौपाईका भावहै ॥

क्षपणक उवाच ॥

सवैया।

बुद्धवाकनते सर्वज्ञ सुबुद्ध जबै, रिजुबुद्धिसु ताहि पछाने ॥
तो सर्वज्ञ सुमोहिलखो जगमें, सबभूत भविष्यत जाने ॥
पितरापितामह सातकुलीलग, तूं मम दासनही ममछाने ॥
सुनके यहबात दिगंबरकी,पुनि भिक्षुक चीत्त वडे खुनसाने६७

भिक्षुक उवाच ॥

दोहा।

हा पिशाचपापी बडे, मोको कहे सुदास ॥
दंतपंकधर मलन अति, बुरीसुतें तनवास ॥ ६८ ॥

क्षपणक उवाच ॥

चौपाई।

रे बिहार दासीके पियारे। यह इक मम दृष्टांत उचारे ॥
कोपनतूं मनभीतर आन। तेरो हित अब करो बखान॥६९॥

दोहा।

बुद्धअनुसासन दूरतज, अर्हतमतो सुधार ॥
मोहि दिगंबरपद लहो, देहु सुबसन उतार ॥ ७० ॥

भिक्षुक उवाच ॥

चौपाई।

हा पापी तूं भयो सुनष्ट । औरन नाशचहें अतिदुष्ट ॥
मनो मशान पिसाचहि आयो । यों तव देख लोक डरपायो ७१॥

(१) वेश्याके भर्ता यह हमने दृष्टांत कहाहै ॥

लोकअनिंदत जो वड भागी । अपनो राजसुख वहुत्यागी ॥
तेरो वेस पिसाच सुजोई । कौनचहे भवभीतर सोई॥ ७२ ॥

दोहा ।

अंर्हत नहिं सर्वज्ञथो, धर्म कहे किह सोइ ॥
तो विनश्रद्धा ताहि मत, कहो सुकांको होइ ॥ ७३ ॥

क्षपणक उवाच ॥

चौपाई ।

ग्रहनक्षत्र सकल सोजाने । चंद्र रविको ग्रहण वखाने ॥
नष्ट लाभ पुन भावीज्ञान । पाछे भई सु करे वखान ॥७४॥
गणनामहि अंतर नहिंरहे । अतीन्द्रियवस्तुज्ञान वहुकहे ॥
तातेहै सर्वज्ञ अर्हंत । ऐसैं माने जे जगसंत ॥ ७५ ॥

कवि रुवाच ॥

दोहा ।

सुन भिक्षुक अतिशयहँस्यो, भूपति सभामझार ॥
गुलावसिंहगाति औरहीं, लागो करन उचार ॥ ७६ ॥

भिक्षुक उवाच ॥

चौपाई ।

अनादिकालका ज्योतिषजोई । अतीन्द्रियज्ञान कहेसवकोई ॥
तांपरंतारक तुम जग भये । कष्टव्रत शिरपर धरलये ॥७७॥
और कहों इककरो वखान । तव मतजीवंशरीर प्रमाण ॥
विनासंवंध त्रिलोकीज्ञान । ताको किहविध होइसुभान७८॥

(१) अर्हंत तो सर्वज्ञ था नही तिसने धर्म किसप्रकार कहा सो कहिये। (२) वञ्चक। (३) विज्ञानरूप ॥

कुंभोपहित दीपकहै जोई। यद्यपि शिषा बडीतिह होई॥
ग्रहमैं अहे पदार्थ जेते। कबी प्रकाश सके नहिंतेते॥७९॥
ताते अर्हंतदर्शने जोई। उभे सुलोक विरोधी सोई॥
सौगतदर्शन अतिसुखकारे। वहु हम सुंदरनयन निहारे॥८०॥

शांति रुवाच॥

दोहा।

सजनी श्रद्धा नाहिंइहां, चलैं ठौर अब आन॥
करुणा कह्यो सुएवकर, आगे कियो पयान॥ ८१॥
शांतिसु आगे देखकर, बोली वचनउदार॥
सामासद्धांत सुयह खडो, आगे सखीनिहार॥ ८२॥
भवतु तथा करुणाकह्यो, चलैं समीप सुयाहि॥
मतश्रद्धा तह होइ पुन, अवलो पेखीनाहिं॥ ८३॥
तबै कपालकरूपधर, सोमसिद्धांत प्रवेश॥
कीनो सभामझार तह, जहकीरतिवरम नरेश॥ ८४॥

सवैया।

नरहाडनकी गल मालधरी, शंवदंतनके श्रुतिकुंडलछाएं॥
भुज अंगदहाडनके सुधरे, निशको सुमशाननमाहि बसाए॥
मज्जन छारविपे सुकरे, तनमें, सुमशानकी छार लगाए॥
अतिभीपन आहि अकारवडो, नरमूंडकपाल सुभोजन पाए८५

(१) शास्त्र। (२) उमाके साथ जोहोवै सो कहिये सोमसिद्धांतशास्त्र।
(३) मुडदाके॥

कपालक उवाच ॥

दोहा ।

योगांजनसों मैं पिखों, जोकछु जगतमझार ॥
भिन्नोऽभिन्न सो ईशते, लीनो जगत निहार ॥ ८६ ॥

कवि रुवाच ॥

क्षपणक ताहि बिलोकिकर, भिक्षुक कीन उचार ॥
एहु कपालक बृतीनर, पूछे ताहि बिचार ॥ ८७ ॥
क्षपणक भिक्षुक पूछियो, ताहि समीप सुजाइ ॥
कपालकरे नरमूंडधर, हमे सुदेहु बताइ ॥ ८८ ॥
हमरे उर संशयभयो, धर्मसुतें मत कौन ॥
तबै कपालक बोलियो, महा अमंगल भौन ॥ ८९ ॥

कपालक उवाच ॥

कवित्त ।

सुन क्षपणक अब तोहिको बखानकरों,
सुनके हमारो धर्म चित्तमाहि धारिये ॥
भालके कपाल यह चरबी बिसाललगी,
मांसकी अहूतीगहि पावक सुडारिये ॥
भूसुर कपाल डारमदरा बिसाल पुन,
कीजे मुखपान इम वृतको उपारिये ॥
काट नरमुंड हम भैरवसुझुंड भजें,
श्रोणतकी धार पांव भैरवपषारिये ॥ ९० ॥

(१) जगत परस्पर भिन्नहै ईश्वरसे अभिन्न है । (२) वेषधारी । (३) समूह ॥

सुनकै सुभिक्षुक दबाइ दोऊकानलए,
क्षपणक ओर पुन ऐसोतो अलायोहै ॥
सुनो बुद्धं बुद्धवंत संतहो महंत बडे,
दारुण सुधर्म कपालक बतायोहै ॥
क्षपणक ताहिको पुकार जनमाहि कह्यो,
घोरपापकारी किने याहिको ठगायोहै ॥
गुलाबसिंह सुनत कपालक कराल अति,
कीने दृगलाल मनमाहि खुनसायोहै ॥ ९१ ॥

कपालक उवाच ॥

कवित्त।

मुंडत सुमुंडरे चंडाल भेषपापीवडे,
बडेही परवंडी शिर केसन पुटाइहै ॥
लोकनके ठगरे सुभागते पलाइगए,
शिवको महानपथ ताहिमें नआइहै ॥
चतुर्दश भौनजोई क्षणमें उपाइलए,
करे प्रतिपाल पुन क्षणमें खपाइहै ॥
वेदांतके सिद्धांतमें प्रसिद्ध प्रभाव जाहि,
पूरन भवानीपति लोग वेद गाइहै ॥ ९२ ॥
ताहिको सुमतलयो जाहिको प्रभावनयो,
धर्मको महात्म सुनैनदेखि लीजिए ॥
विष्णु दिजेश औ सुरेश आदिबडेदेव,
नैनके निहारो कहोईहा आनदीजिए ॥

---

(१) जैसे वैष्णवमतमें हेविष्णो हेविष्णोऐसे वैष्णव उच्चारण करतेहै तैसे बुद्धके मतमें बौद्ध भी हेबुद्ध हेबुद्ध ऐसे उच्चारण करतेहैं ॥

नभरविचन्दऔनक्षत्रकेकदंबजिते,
कहो याहिगतेघरबैठेहीरुकीजिए ॥
कहो नरनागर सुभूमिजल पूरदियों,
कहो क्षणभीतर सुतोयसभ पीजिये ॥ ९३ ॥

क्षपणक उवाच ॥

सुनरे कपालक सुभईमति बालक,
सुमानवको मूंड तव करमै उठायोहै ॥
काहू इंद्रजालक सुमायाको दिखाइ तव,
मोह मन लयो उर तोहको भ्रमायोहै ॥
ऐसे सुन कान सुकपालक मलान अति,
दाबि दोऊकान मनमाहि खुनसायोहै ॥
इंद्रजालवत भर्गवंतको सुमूढकहें,
तीनलोक जाहि क्षण एकमै बनायोहै ॥ ९४ ॥
तोहि दुष्टात्मता सुमोहिते नसहीजाइ,
काढिके सुखग अव करमै उठाइहों ॥
कालकरवालसों उतार भाल तेरो अव,
कंठ तव नालते सुलोहूकोचुआइहों ॥
डमरू बजाइ पुन भूतकिलकाय संग,
काट तव मूंड सुभवानीको चढाइहों ॥
श्रोणतकी धार छुटे फेन अरु बूंद उठे,
पेखि सुखहसें शिवपतनी रिझाइहों ॥ ९५ ॥

(१) महादेव ॥

दोहा।

ऐसे मुखो उचारकै, लीनोखगनिकार॥
क्षपणक पिख उर भयभयो, लागो करन उचार॥ ९६॥

क्षपणक उवाच।

दोहा।

अहिंसा परम सुधर्महै, महाभाग इमजान॥
वर्न्यो सुभिक्षुक अंकमैं, ऐसे मुखो वखान॥ ९७॥
तव भिक्षुक कपालकको, वारन कीनो आप॥
महाभाग भैरव भक्त, क्षपणकहै निहपाप॥ ९८॥
कौतुककथानिमित्त अव, हनो न याके प्राण॥
कपालक ऐसे सुनतही, कीनोखगमियान॥ ९९॥
क्षपणक स्वस्त सुहोइकर, वहुर पुछे विख्यात॥
महाभाग यद्यपि कुपें, तदपि पूछों वात॥ १००॥
कह्यो कपालकपूछ अव, क्षपणक प्रश्न सुकीन॥
मैं सुनियो तुमरो धर्म, अहै सुपरम प्रवीन॥ १०१॥
कैसे तव मत सूखहै, कैसे मोक्ष तुहार॥
मैं उरमें संशयभयो, नीके करो उचार॥ १०२॥

कपालक उवाच॥

चौपाइ।

विषयविना सुख कहूं न पेखै। आनँद वोध विषयमैं लेखै॥
ताते विषयभोगहै जोई। वहीसूख कछु और नहोई॥ १०३॥

(१) सुखानुभव॥

आत्मैंस्थित मोक्ष बखाने । ते पशुबुद्धि सुमहा अजाने ॥
उपलअवस्था वहुजगअहे । बुद्धिवंत तिह किह बिधचहै॥१०४
अपनीवयकी जो अनुरूपा । युवती मिले सोमोक्ष अनूपा ॥
यापर संमैंत तोहि दिपाऊं । तेरो सब संदेह मिटाऊं ॥ १०५ ॥
पारैंवती प्रतिरूप नवीना । तासंगरहे सदा सुखभीना ॥
चन्द्रचूड शिव मुक्तिभनीजे । क्रीडाकरें दरस दुःखछीजे ॥१०६

भिक्षुक उवाच ॥

दोहा ।

श्रद्धालायक नाअहे, महाभाग यह रीत ॥
विषयराग बीत्यो नहीं, मुक्ति कहा तिह मीत ॥१०७॥

क्षपणक उवाच ।

दोहा ।

अरेकपालक रोपतजि, पूछों बात प्रसिद्ध ॥
अर्धशैंरीरी मुक्तिपुन, यह मत सकलअशुद्ध ॥ १०८ ॥
सुनत कपालक मनविषे, कीनो इहे विचार ॥
याके अंतः करणमें, अहे अश्रद्धाभार ॥ १०९ ॥
निजमतश्रद्धा आज पुन, लीजे वेगबुलाइ ॥
मुखोंबखान्यो प्रगट तिन, श्रद्धे तूं इतआइ ॥ ११० ॥
तब आई श्रद्धा तहां, रूप कपालक धार ॥
करुणा ताको हेरकर, कीनो शांतिउचार ॥ १११ ॥

(१) सुखानुभवसे रहित जे जीवकी स्थिति मुक्ति मानतेहैं । (२) दृष्टांत । (३) पार्वतीके सदृश स्त्रीके साथ जो क्रीडाकर्ताहै सो मुक्त कहाजावैहै ऐसे महादेवजी कहतेहै अर्थात् उमासहित महादेवके उपासकोंको सरूपामुक्तिकी प्राप्तिहोतीहै यहतात्पर्यार्थहै । (४) अर्धंगीकी प्राप्तिही तिनके मतमें मुक्तिहै सो पूर्वकहा भी है अपनीवयकीजोअनुरूपा ॥ युवती मिलेसो मोक्षअनूपाइति ॥

सखी रजोगुणकीसुता, श्रद्धा याहि पछान ॥
गुलावसिंहकवि रूप तिह, आगे करे वखान ॥ ११२ ॥

सवैया ।

नील सरोज विलोल महाहग मांग संधूर सुपूर बनाई ॥
सुंदर भूपण आहि घने नर हाडनकी गलमाल सुहाई ॥
पीननितंव सुपीनकुचाकटि मध्यम आननचन्द लजाई ॥
आइ प्रदक्षण ताहि दई काहिस्वामिन् आयसुदेहु वताई॥ ११३
हैअभिमान वडो इनको अव भिक्षुकको गहिलेहु पियारी ॥
योंसुनवात कपालककी हँस भिक्षुक अंकामिली भुजडारी ॥
भिक्षुक सानँद अंकलई तन रोमखडे सुजगे शिवओरी ॥
सुअहोसुख याहि कपालनिका हम धंनभये इमवात उचारी॥
पीन पयोधर नारि कबूं जिनके मतना मम अंक छुहाई ॥
भूलपिखों तव मारकरें अरु दोपजनावत ग्रन्थ सुनाई ॥
श्रावग औ तिनग्रन्थनको शतवार धिकारवडे दुःखदाई ॥
आजकपालनिपीनकुचाछुहि मोदवढे सुवडी सुखदाई॥ ११५
सुअहो शुभपुण्यकपालकके जिनके मतयाविधकोसुखपैये॥
सुअहो यह सोमसिद्धांत वडो, जिनके सम और नदूसरहै ये॥
पुन है यह धर्म अचंभ वडो, वडभाग सुनो सुकहासुख गैये॥
अव मै हढश्रावगपंथ तजे, कवहूं तिनके मत भूल नजैये ११६
परमेश्वरको यह सोमसिद्धांत, सुतांहिविषे अव मैं चलआयो॥
अव तूं गुरुशिष्यसु मोहि पिखो गुरु सीषदिजे सुपरेंतव पायो॥
पिख ताहि दिगंवर कोपभये, सुकपालनिसों तव अंगछुहायो॥
शठ भिक्षुकदूरचलो अति दूषत क्यों मम आवतहैंनिकटायो ११७

(१) कामदेव ॥

दोहा ।

तव भिक्षुक क्षपणक कह्यो, वंच्यो पापविसाल॥
याहि कपालनिसंगसुख, कहां तुम्हारे भाल ॥ ११८ ॥

चौपाई ।

तव भिक्षुक पुन एहु उचारी । क्षपणकको गहुवेगप्यारी ॥
क्षपणकअंग मिली दृगलोले । भये रुमंचसु क्षपणक बोले॥११९

सवैया ।

सु अहो सुन श्रावग श्रावगजू सुकपाल निसंग बडो सुखदाई॥
अतिसुंदर देह सनेह बढे, सुहिफेरमिलो भुजदंड लँबाई ॥
सुन श्रावग सूख महानभयो, यह अंमृतकी सुविरंचि बनाई ॥
अव जाइ इकंत रमो तिनसों,इम गूढातिने मनमाहि ठराई॥१२०
घनपीनपयोधरसोभिन तूं, मृगशावकभीत सुनैन तिहारे ॥
सुकपाल निजोममसंग रमे, तव श्रावगको डरु नाहिं हमारे॥
सुकपालक आगमधनअहो, जिनभीतर मोक्षसु सूखअपारे ॥
सुकपालक आज अचार्य तूं, हम दासभये तव पादजुहारे १२१

दोहा ।

भैरवके अनुसारने, शिक्षा दीजे मोहि ॥
मैसभ पंथ निहारया, पूरण पेखे तोहि ॥ १२२ ॥
कह्यो कपालक दोनको, वैठो मो ढिग आइ ॥
तव क्षपणक भिक्षुक तथा, वैठे मोल झुकाइ ॥ १२३ ॥
कपालक भांजन हाथलै, वैठो लाईध्यान ॥
श्रद्धा तवै कपालनी, ल्याई सुरा महान ॥ १२४ ॥

(१) महाभैरवशास्त्रानुसारी ॥

सवैया।

भगवंत महंत बडे जगसंत, सुमैमदसों यह पूर्णकीयो ॥
तव नैन उघार बिलोकि भलीबिध, आप कपालकसो मद पीयो
कछु शेषरह्यो मदभांजनमैं, तिनाभिक्षुक और दिगंबरदीयो॥
यह पावन अंमृत पानकरो, सबबंध तजो सुखसोंसुतजीयो १२६

तथाच तंत्रे ॥

पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा, यावत् पतति न भूतले ॥
उत्थाय च पुनः पीत्वा, पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १ ॥

सवैया।

भवभेषज है पशु पाशकटे, मदपानसु भैरव आप बतायो॥
इत ते मनमाहिं विचार करें, सुदिगंबर योंमुखमाहिंअलायो॥
हमरे मतमै मदपाननहीं, सुअर्हतगुरुमुहि आप छुडायो ॥
किहभांति कपालक जूठपिवों, मदिराइहभांतिसुभिक्षुकगायो॥
सुकपालक पेख कह्यो श्रद्धे, सुविचारकरें मनमें सकुचाए ॥
अवलौं मति याहि मलीन अहे, पशुभावनहीं इनके सुमिटाए॥
हमरे मुख.संग सुदोष अपावन, याहि सुरा मनमाहिं ठराए॥
अव तूं मुखेआसवपूरणकै, इन देहु सुराजु इने भ्रम जाए १२७॥
सुसदा शुचि नारिनको मुखहै, इहभांत कहें कवि वेदवीयो॥
श्रद्धा सुकपालक जोरदोऊ कर, नाथ कहो सुबनै अबकीयो॥
मदभांजन लै मुखपानकरे, पुन शेप सुभिक्षुककै कर दीयो॥
मुहिआजप्रसादमहानभयो, इमभाषसुभिक्षुकसोमदपीयो १२८

(१) मूर्खता। (२) अपने मुखमें मदिरा पवित्रकरकै। (३) (स्त्रीमुखं तु सदा शुचिः) ऐसे कहाहै परंतु तहां अपने स्त्रीकामुख शुचिहै यह कथन है परस्त्रीके मुखका निषेध है. पापका जनकहोनोते ॥

सुअहे यह आसव गंधवडी, मुखपानकरे मनमे विगसाई ॥
नहिं वारबधूसंग पानकरे, मुखगंध सरोजसमान सुहाई ॥
सुकपालिनिके मुख गन्धमिली, अवपीवसुरासभमेंसुधआई
सुर सांच सुधा उर चाहतहैं, अव मोहि त्रिलोकिसु देत दिखाई

क्षपणक उवाच ॥

दोहा ।

रेभिक्षुक मतपीव सभ, भयो प्रसादसु तोहि ॥
याहि कपालिनि जूठमद, देहु कृपाकर मोहि ॥ १२० ॥
तब भिक्षुक मद चखकर, दीनो क्षपणकहाथ ॥
पीवत प्रसन्न सुहोइ मन, बोल्यो झोक सुमाथ ॥ १२१ ॥

सवैया ।

सुअहो मदस्वाद महांमधुरो, सुअहो मदगंध वडी सुखदाई ॥
चिरबेसुखयासुखते सुरह्यो, सुअर्हतकरी मोहि भूरिठगाई ॥
सुन भिक्षुक मेंदृग घूमतहैं, सभ अंगनमै उपजी अलसाई ॥
अंवसैनकरों पुन भिक्षुकतो, अबऐंव करो मुखबात अलाई १३२

सवैया ।

वहु दोन तहां तब सोइ रहे, सुकपालक योंमुखमाहि उचारे ॥
पिख एहु कपालिनि दोनो परे, विनमोलभये अव दास हमारे ॥
अब नाचकरें तब दोऊनचें, पिख ताहि दिगंबर नैन उघारे ॥
भिक्षुकरे गुरुसंग कपालिनि, नाचत पेख महामत्तवारे ॥ १२३ ॥

---

(१) मदिरा ॥

सवैया।

इनके संग आउ सुनाचकरें, कहि भिक्षुक ऐंवकरें बिगसाए॥
मदघूमत नैन सुनाचकरें, थिर्वके पदयों मुखमाहि सुगाए॥
घनपीनपयोधर चन्दमुखी, मृगनैन कपालिनि तोहि लजाए॥
कविसिंहगुलाव लहें गतियों, जिनके उरमैं महामोह भ्रमाए १२४

कवि रुवाच॥

सवैया।

जिनके मनमैं हरिध्यान नहीं, शुभपंथनते मिटजावहिगे॥
तजि संयमनेम असंकरहें, जगभीतर सिद्ध कहावहिगे॥
तज पंथ सनातन माहि कलू, मन बांछत पंथचलावहिगे॥
जग फैलेगो इहभांति कलू शुभसंत अनादर पावहिगे॥१२५॥

भिक्षुक उवाच॥

दोहा।

अद्भुत आगम एहहैं, कहे कपालक जोइ॥
विनकलेश जिह मतविषे, अभिमत सिद्ध सुहोइ॥ १२६॥

कपालक उवाच॥

दोहा।

क्या अद्भुततातैं पिखी, और पिखो अब सोइ॥
बांछित विषय सुभोगिये, बहुर सिद्ध सभहोइ॥१२७॥

दोहा।

अणमा महिमा आदिजे, अष्टसिद्धि प्रधान॥
तेसभ यांमतमैं लहे, बिनाखेद पहिचान॥ १२८॥

(१) भूमिमें पद स्खलितहोतेहैं नाम गिरतेहै। (२) ये आठसिद्धि महासिद्धि कहीजावैहै॥

वशं आकर्षण मोहणी, और परमाथनिजान ॥
परक्षोभन उच्चाटनं, प्राकृतसिद्ध पछान ॥ १३९ ॥
योगविघन यह तज्ञको, चहें नाहितिहधीर ॥
परअनषंगकआइहै, ऐसो मतो गंभीर ॥ १४० ॥

क्षपणक उवाच ॥

चौपाई।

अलेकवालि यायों सुखगायो। क्षपणक वहुर विचार सुआयो॥
अथवा अले अचालेभाले। अपाँलपलाकम अहे सुथाले १४१

सवैया।

पिख भिक्षुक ताहि हसे मुखमै,सुकपालकके प्रति एहुउचारे॥
मदरा वहुपानकरी तपसी, मतिभूलगई सुभये मतिवारे॥
मुखवाकसु.व्याकुल एहुभयो, मदको उनमादसु देहु निवारे॥
सुन भिक्षुक वातकपालकतौ, मुखभीतरतेसुतंबूलनिकारे १४२
मुखसीत तंबूलकपालकजो, सुदिगंवरको निजहाथ दयो ॥
मदको मद दूरभयो क्षणमें, धरशीस तंबूल चवाइ लयो ॥
कर जोर गयो गुरुकेढिगते, मन भीतरसो सवधान भयो॥
गुरु पूरणतें पदकंजलहे, इक पूँछत तोहि संदेशनयो॥ १४३ ॥

---

(१) वशकहिये मंत्रोषधियोंकरकैही अन्यको वशकरना १ आकर्षण कहिये मंत्रोषधियोंकरकैंही दूसरेको अपने, पास खैंचिलेना। २ मोहन कहिये मंत्रोषधियोंकरकै पुरुषको भ्रांतिकी उत्पत्ति करनी ३ परमाथिन कहियें मंत्रोषधियोंकरकै परकै मनको दधीकीन्याई मथनकरना अथवा सकलज्ञानका नाशकरना ४ मक्षोभण कहिये मंत्रोषधियों करकै पुरुषके चित्तको विशेष क्षोभकरना ५ उच्चाटनकहिये मंत्रोषधियोंकरकै स्वस्थानसें पुरुषको भ्रष्टकरना ६ इत्यादिक माकृतसिद्धि कहीजावैंहैं ॥ सोअर्थसे माप्तहोवहैं। (२) अरे कापालिक। (३) अरे आचार्य। (४) थाले नाम थारें मस्तकमें अथवा थारे तुमारा अपाल कहिये अपार पलाकम कहिय पराक्रमहै ॥

जिमते मादिरा मम चीतहरे, गहिवेगसु भैरवके मतलयाए ॥
यह सिद्धि वडी निजनैनापेखी, तिम और कहों कछुहैनरपाए॥
युवती सुमनोहरपेख जवै, गुरुजो तव सेवक चीत लुभाए ॥
वहुआनसको किनहीजगमें, इहसंक वडीगुरुदेहुमिटाए १४४

कपालक उवाच ॥

दोहा।

पूछत कहा विशेष पुन, सकल वखानो तोहि ॥
विद्यावल सभको हरों, ढील नलागत मोहि ॥ १४५ ॥
विद्याधरी सुरंगना, सर्प यक्षनी नारि ॥
तीनभवन मनभावती, ल्यावों भौनमझार ॥ १४६ ॥

क्षपणक उवाच ॥

चौपाई।

मैं ज्योतिप पडियो वहुवारा। कीन गणत मम एहु निहारा ॥
हम सभ महामोहके दासा । धर्मपंथ सभ करें विनासा १४७॥

कपालक उवाच ॥

चौपाई।

आयुपमान यथातत्व जान्यो। साँच अहै नहिंझूठ वखान्यो॥
क्षपणक कह्यो भूपको काज। करें विचार भले कछु आज १४८
कपालक कह्यो कौनवहुकाज। क्षपणक कहें वतावहु आज ॥
शांतिसुता श्रद्धा है जोई। भूप कही गहिल्यावो सोई १४९॥
कपालक कहे सुकरोउचारि। दासी सुता कहावहुनारि ॥
विद्यावल मैं अवै दिखाऊ। ताको वेग केश गहिल्याऊ१५०॥
क्षपणक तव धरपटा सुआगे। लेकर नीपुन गणन सुलागे ॥
शांति तवै पुन कीन वखान। करुणासखी सुनो दे कान१५१॥

(१) शातिहै सुता जिसकी ऐसी जो श्रद्धा वा शांतिकहिये सत्वगुणकी सुता कहिये कन्या ऐसी या श्रद्धाहै। (२) गालीमदानहै। (३) सिलेट। (४) पत्थरकीकलम॥

यह हतआश सुकरें विचार। मम माताको नाम उचार ॥
होइ इकागर सुनो प्यारी। करुणा कह्यो सुभली उचारी १५२

दोहा।

ते दोनों ठाढी तहां, चीत इकागर धार॥
कर गणती क्षपणक तबै, लागो करण उचार॥१५३॥

चौपाई।

नहिंजल नहिंथल नाहि पहारन। श्रद्धा नांहि सुमाहि पतारन ॥
विष्णुभक्तिके संग मिलाइ। बसीमहात्मजनउरजाइ १५४
करुणा सानंद कीन उचार। भलाभया सजनी सुनीसार॥
श्रद्धा विष्णुभक्तिके पास। बसे महात्म उरसुखरास १५५
सुनिकर शांति हर्ष उर भयो। बहुर कपालकवचनअलयो॥
कामेबिहीन धर्म पुन जोई। क्षपणक कहो कहा अवसोई॥
क्षपणक अंकमालबिसतारी। गणतीकर पुन कीन उचारी॥
जल थल गिर पताल सोनाहीं। अहे महात्मके उरमाहीं १५७
कपालकसुनत विखादहि भयो। मोहमहीप कष्ट अतिभयो ॥
देवी विष्णुभक्ति है जोई। सभसिद्धिनिकी मूल सुसोई ॥
शांतिसुता श्रद्धाहै जोई। ताहिसमीप बसी अब सोई ॥
कामाविमुक्त धर्म तह जव हीं। बसेअनर्थ होइ हमतबहीं १५९
विवेकभूपके कार्य जेते। यद्यपि सिद्ध होइगे तेते ॥
तदपि महामोहको काज। करें होइ जेतो कछुआज १६०
जाके लौन बहुतदिन खाए। ताहित मरे जगत जसपाए ॥
तातैं प्राण जाहिं तो जैये। स्वामिकाज बललायसुकैये ॥

(१ निष्कामधर्म ॥

महाभैरवी विद्या सार। अबी पठै येहोइ नबार ॥
श्रद्धाधर्म उभै हरिल्यावे। महात्मजनहु कुपंथ चलावै १६२

दोहा।

महामोहअनुचर सभै, गए अखाडो त्याग ॥
गुलाबसिंह अबशांति पुन, भाषतहै बडभाग ॥ १६३ ॥
मम माताके हरनहित, हताशन आश सुकीन ॥
विष्णुभक्तिको जाइ अब, कहिये सखी प्रबीन ॥१६४॥
इमकहि करुणा शांति पुन, भई सुअंतरध्यान ॥
कीरतिवरमा देव पिख, भयो शुभाशुभ ज्ञान ॥१६५ ॥

दोहा।

विष्णुभक्ति आगे सुनो, श्रद्धा रक्षा कीन ॥
विवेकसमीप पठाइगी, होइ सकल अरि खीन ॥ १६६ ॥

इति श्रीमन्मानसिंहचरणशिक्षित गुलाबसिंह विरचिते प्रबोधचन्द्रोदयनाटके पाखंडविडंबनो नाम तृतीयोऽङ्कः समाप्तः ॥ ३ ॥

---

(१) महाभैरवीविद्या कहनेकर, कपटउपाय तिनोंने रचा। (२) हताशन कहिये नष्ट होवै आशा जिनोंकी सो कहिये हताशन ॥

इति श्रीमदुदासीनवर्य्य परमानंद शिष्य गुरुप्रसादविरचिता प्रबोधचंद्रोदयनाटक तृतीयांऽकटिप्पणिका समाप्ता ॥ ३ ॥



ॐ श्रीगणेशायनमः ।

अथ चतुर्थोङ्कप्रारंभः ॥ ४ ॥

दोहा।

पेखत जांतज मोहको, लहे प्रवोध उदार ॥
सीतावर वरकल्पद्रुम, वसे सुचित्तमझार ॥ १ ॥
कीरति वरमा देवकी, आई सभामझार ॥
मैत्री रूप निहारके, मिटे सुनिखल विकार ॥ २ ॥

सवैया ।

दृग नीलसरोरुह शोभतहैं, अलिकै कच नील कपोल सुहाई॥
मुखचन्द अनन्द करे उरको, गतिमंद मनोजन चीत चुराई ॥
कटिसूक्ष्म पीन नितंब कुचा, दृग लाजवडी निरखे सुखदाई ॥
कविसिंह गुलाव निहार सभा, नृपकीरति वरमाकी विगसाई ३

मैत्र्युवाच ॥

चौपाई।

सुदिता मोप्रति कीन बखान । मैं सुनियो सजनी निज कान॥
महाभैरवी धरणिगिराई । श्रद्धा विष्णुभक्तिसु बचाई ॥ ४॥
है उत्कंठा चीतमझारी । किहाविध पेखो सखी पियारी ॥
ऐसे मैत्री भाष्यो जवहीं । प्रवेशकीयो श्रद्धातिह तवहीं॥५॥

श्रद्धोवाच ॥

दोहा।

मै उर मै अतिडर भयो, काँपत मोहि शरीर ॥
महाभैरवी मै पिखी, धारत ना उरधीर ॥ ६ ॥

सवैया।

घोर महा बिकराल बडी, नरमूंड कपालन्न कुंडल पाए ॥
बिजुछटा तनकी द्युति है, दृगपेखनते जनु ज्वाल बमीए ॥
कच पिंगे सुदाडहि चन्दकला, तिनभीतर दीरघजीभ हलाए॥
समरंभदला तन कंपतमें, जनु नैन पिखो इमचीत डराए ७॥

दोहा।

मैत्री मनहि विचारकर, लागी करन बखान ॥
श्रद्धा व्याकुल अतिभई, होवत ना कछु भान ॥ ८ ॥

चौपाई।

एहु पियारी सखी हमारी । संभ्रमरिदेसुभई दुःखारी ॥
कदलीदलतन कंपत सारा । कछु मनभीतर करत विचारा ९॥
याके सनमुख मै अवआई । लखै नमोहि नशुद्ध सुकाई ॥
याको मै अव वेग बुलाऊ । पूछो जाहि संदेह मिटाऊ ॥ १० ॥

मैत्र्युवाच ॥

दोहा।

हेश्रद्धे प्यारी सखी, कहागयो मन तोहि ॥
मैं तेरे आगे खडी, नाहिनिहारत मोहि ॥ ११ ॥
श्रद्धा ताहि विलोकि पुन, लांबो लीन श्वास ॥
सखीप्यारी मै डरी, आउ हमारे पास ॥ १२ ॥

(१) अनलज्वालाको छोडतीहै। (२) केशकपिशरगवालेहै ॥

चौपाई।

कालनिशा सम वदन कराला। मैं ताभीतर ग्रसी विहाला॥
याहि जनमविषे पुनप्यारी। तोहिपिष्योममभाग उदारी १३॥
मैत्री सखीसु अंग मिलीजे। मेरे दुख दूर सभ कीजे॥
तव मैत्री पुन अंग मिलानी। श्रद्धा लाइ गले विगसानी॥१४॥

मैत्र्युवाच॥

चौपाई।

महाघोर दरशन है जाहि। विष्णुभक्ति पुन डाट्यो ताहि॥
महाभैरवी विपति मलीन। कहो सखी तिन करम सुकीन॥१५॥

श्रद्धोवाच॥

सुनसजनी मै करों बखान। जैसे वाजपरे बलवान॥
एकहाथमै कच गहिलीने। दूसर धर्मगह्यो दुःख दीने॥१६॥
लेकरदोनो गगन उडानी। मनो गीद्ध लेमांस पलानी॥
मैत्री सुन उरमाहि डराई। हा धृग हा धृग मुखो अलाई १७॥
भई मूरछा तनमै भारी। श्रद्धा वहुरों कीन उचारी॥
सखीप्यारी डरु नहि करो। तुम नीके उर धीरज धरो॥१८॥
मैत्री तवै धीर उर धार। श्रद्धे सखी सुकरो उचार॥
श्रद्धा वहुरों कीन बखान। सुनो सखी नीके देकान॥१९॥
मैअतिआरत दीन पुकारी। विष्णुभक्ति उर दया सुधारी॥
टेढीदृष्टि निहाऱ्यो जबहीं। गिरी भैरवी धरमै तबहीं॥२०॥
वज्रपातजिम शैल गिराई। जरजरअंग गिरी तिमआई॥
विष्णुभक्ति उर वसे हमारे। गुलाबसिंह सेवक प्रतिपारे॥२१॥

(१) एकहाथसे मेरेको केशोंसे गहिलिया। (२) दूसरे हाथसे निष्कामधर्मको॥

मैत्र्युवाच ॥

दोहा।

भलाभया जीवत सखी,आज निहारियो तोहि ॥
मनो मृगी शरदूलमुख, छुटी बहुर कहुमोहि ॥ २२ ॥

श्रद्धोवाच ॥

चौपाई।

देवी विष्णुभक्ति उर भारी। भई क्रोधमुख एहु उचारी ॥
महामोह दुष्टात्म जोई। हनो समूल रहे नहि सोई ॥२३॥
मोहि अविज्ञा ताहि कराई। श्रद्धा केशनते सुफराई ॥
ऐसेकहि मुहि कियो बखान। श्रद्धे वेगसु करो पियान ॥२४॥
बहुर विवेकसमीप सुजाई। काम क्रोध मोह दुखदाई ॥
तिनजीतनहित सैनामिलाइ। हुइ वैरागसु तोहि सहाइ ॥२५॥

दोहा।

प्राणायाम सुसंगमिल, मैं आवों ततकाल ॥
कृपा करों तवसैनपर, करो सुजंग विसाल ॥ २६ ॥

चौपाई।

ऋतंभरादि प्रज्ञा हैजेती। शमदमादि सगली मिलतेती ॥
प्रबोधपूतहित देव मनाए। कब विवेकउपनिषत मिलाए२७॥

दोहा।

तातैं तूं उपनिषत संग, मिल विवेकसुत मोर ॥
ममआय सुप्रबोधसुत, होवेगो ग्रह तोर ॥ २८ ॥

---

(१) व्याघ्रमुखसे। (२) महाभैरवीसे मेरा तिरस्कार करायाहै। (३) (ऋतं सत्यं भरति बिभर्ति सा ऋतभरा प्रज्ञा) अर्थयह—ऋतकहिये सत्य अर्थकूं जो धारणकरनेवाली वृत्तिहै ताका नाम ऋतभरा प्रज्ञाहै ॥

चौपाई ।

मैत्रीमैं विवेक ढिगजाऊ । विष्णुभक्ति संदेश सुनाऊ ॥
बासर तूं किहभांति बिताए । कौनकौन आचरन कमाए ॥२९॥

मैत्र्युवाच ॥

दोहा ।

विष्णुभक्तिकीआज्ञया, चार बहिन हम नीत ॥
विवेक काजके सिद्धहित, वसें महात्म चीत ॥ ३० ॥

चौपाई ।

महात्मजन जगभीतर जेते । याविध वर तें सगले तेते ॥
सुखियनमैं जनमें उरधरें । दुःखियनमैं करुणा उरकरें ३१॥
पुंनवंतमै मुदिता धरें । दुष्टनमाहि उपेक्षा करें ॥
योंकर रागद्वेष कलषाई । मिटे निजात्मकी सुमलाई ॥ ३२ ॥

दोहा ।

मैत्री करुणा मुदिता, और उपेक्षा जान ॥
चार बहिन हम जीवकी, करें सकल मलहान ॥ ३३ ॥
चली प्यारी सखी तूं, महाराजके पास ॥
कहां निहारे भूपको, मोहि करो प्रकास ॥ ३४ ॥

---

(१) तथाच सूत्रं (मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्याऽपुण्यविषयाणां भावनातः चित्तप्रसादनम्) अर्थयह—सुखी दुःखी पुण्यात्मा पापात्मा पुरुषोंविषयक यथाक्रमसे मित्रता दया मुदिता उपेक्षा इनधर्मोंकी भावनाके अनुष्ठानसे चित्तको प्रसन्नकहिये निर्मलकरे अर्थात् जे पुरुषसुखीहैं तिनमें मैत्रीकी भावना करे जे दुःखीहैं उनपर कृपाकी भावना करे जे पुण्यशीलप्राणी है उनमें मुदिताकी भावनाकरे जे पापाचारहैं उनमें उपेक्षाकी भावनाकरें अर्थात् उनके सङ्गउदासीनभावसें वर्तें, इस प्रकार धर्मोंकी भावनासें (चिन्तनसें) चित्तके रागद्वेषादिक मल दूरहोवै हैं इति ॥

श्रद्धोवाच ॥

चौपाई।

विष्णुभक्ति देवीहै जोई। कहीठौर सुनिये अब सोई॥
राढा नाम देश इक गाए। महापुनीत जहां बनछाये॥३५॥

दोहा।

तिह उत्तरतट गंगके, चक्रतीरथ महान॥
मनो विधाता गंगश्रुत, रचे तटंक सुजान॥ ३६॥

चौपाई।

तहां विवेक बसे वडभागी। मीमांसामै जिनकी मतिलागी॥
किवेंकिवें धारे निजप्राना। भये व्याकुलचीत महाना॥ ३७॥
धर्मनी व्याप्ततां तनुभयो। उपनिषत संगहित तप निरमयो॥
परशुरामसम धार सुटेक। करे तपस्या तहां विवेक॥ ३८॥

दोहा।

कह मैत्री अब जाहि तूं, श्रद्धे वेर नहोइ॥
विष्णुभक्ति जो मम कह्यो, कर नियोगहै सोइ॥ ३९॥
इमकहि दोनो चली तव, श्रद्धामैत्री जान॥
अपने अपने पंथमै, बन्दनकर भगवान॥ ४०॥

चौपाई।

श्रद्धा जायविवेक निहारा। धमनी व्याप्ततांतनुसारा॥
तातजीत अरिमुखो अलायो। पिख विवेक पदमोलझुकायो४१
श्रद्धा कर गहि लयो उठाइ। पूछो कुशलनैन जलजाइ॥
विष्णुभक्ति मुख कीनवखान। सुनोपूत नीके दे कान॥ ४२॥

(१) करणफूल। (२) नाडी॥

कामक्रोध पुन मोह अराती। करो पूत इनको तुम घाती ॥
सुन विवेक मुख एहु उचारी। हनो अरातिसहायतुमारी॥४३॥
याअवसर इक मंत्री आयो। नामसुबुद्धि रूप मन भायो॥
मंत्री आइ सुवन्दन कीनो। भूपविवेकसु आदर दीनो४४॥
समाचार सभ भूप सुनायो। सुन मंत्री मनमें हरषायो॥
देव करो तुम वेग उपाइ। जीते निखल अरातीजाइ४५॥

दोहा।

सभामाहि उरहरप अति, अए विवेकसुराय ॥
जा पदकंज प्रतापते, निखल शोक मिटिजाइ ॥ ४६ ॥

सवैया।

सूर्यसों तनु शोभतहै, भुजदंड मनो ब्रह्मंड दवाए ॥
नैन सरोज मनोज हने, सुप्रताप दशोंदिशमै चमकाए ॥
धरणीसम धैर्यहै उरमै, मुखमैघनश्रावणसों गरजाए ॥
भूप निहारसमेतसभा, कविसिंह गुलाव बडे हरषाए ॥४७॥

राजोवाच ॥

दोहा।

हापापी महामोह शठ, हने महांजन तोहि ॥
मै तेंप्राण निकारहों, विष्णुभक्ति कहि मोहि ॥ ४८ ॥

चौपाई।

शांति अनंतमाहिमा उजागर। चिदानंद अंमृत सुखसागर॥
मगनभयो तामै इकबारा। वहुनरचहे न सुखसंसारा॥४९॥

(१) विष्णुभक्तिका ॥

मृगतृष्णा जलहै निहसार। याविधको सागर संसार ॥
मूरख ताहिकरे अचमान। केचित ताहि करे मुखपान५०॥

दोहा।

करअवगाहनरमे तिह, अरध उरध पुनजाइ ॥
गुलाबसिंह विनबोध जग, सदा परमदुःखपाइ॥ ५१ ॥

चौपाई।

अथवा यह चक्रसंसार। महामोह तिह प्रेरनहार ॥
ताको मूल अवोध विचाऱ्यो। तत्वबोधकर बने निवाऱ्यो॥५२॥

दोहा।

ईशअराधन वीजते, उपजे तत्व सुबोध ॥
ताबिन और उपाइ नाहिं, हम देख्यो अति सोध ॥ ५३ ॥

चौपाई।

पुंनवंत जे करे उपाइ। करें देवता ताहि सहाइ ॥
ऐसै तत्व विवेकी कहें। जनके सर्वसंदेह सुदहें ॥ ५४ ॥
विष्णुभक्तिममआयसुकीनी। श्रद्धा आनि मोहि कहिदीनी ॥
कामादिक जीतन उपाइ। करोसिताब सुवारनलाइ ॥५५॥
मैभी करो सहाय तथारी। यों हरिभक्ति सुकीन उचारी ॥
वस्तु विचार अहे जगजोई। काम जिने क्षणभीतर सोई॥५६॥
ताते ताको बेग बुलैये। तांजीतनहित ताहि पठैये ॥
वेत्रवती अब बेगसु जाई। ल्यावो वस्तु विचार बुलाई॥५७॥

(१) श्लोक—प्रायः सुकृतिनामर्थे देवा यान्ति सहायताम् ॥ अपन्थानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुञ्चति ॥ अर्थ यहः—पुण्यात्मा पुरुषोंके अर्थ देवताभी प्रायःकर सहायताको करतेहैं परतु कुमार्गगमनकरतेहुए पुरुषको सोदरकहियेसाथ उत्पन्नभ्राताभी त्यागकरदेवे है ॥

प्रतिहारी तव वेगसिधाई। देव कह्यो सुकरों अवजाई॥
वस्तुविचार संग प्रतिहारी। आई वेगसु सभामझारी॥ ५८॥

वस्तुविचार उवाच॥

छप्पयछन्द॥

विनसुंदरतनु सुंदर पापी मदन दिखाए॥
करे वंचना जगतलोकको नरकि लिजाए॥
अथवा सभदुःखमूल दुष्टमैल्योविचारी॥
महामोह जह अहे जगतमै वडो विकारी॥
पुन जिहविध मोहनिलाज सठ जनउरको भ्रमनाकरे॥
संग मदनमिल दुष्ट यह अव सोप्रकार जनमनधरे॥५९॥

सवैया।

यह कामनि कुंचतहै अलिका, दृगकंजपिखे जन चीत चुराए॥
घन पीन उतंग पयोधरहैं, सुखचन्द मनो सुविरंचि वनाए॥
इहभांति सराहकरे जन मूरख, जांउर तीर अनंग लगाए॥
मलमूत्र सुहाडतुचा पुतली, युवती खलमोह सुयों दरसाए६०॥
वस्तु विचार करे नर जो, तिहको युवती इमदेत दिखाई॥
मलमांसकी चिकडसंग विरंच, सुहाडनकी पुतली सुवनाई॥
मुख थूक सुनाकमै सीढभरी, निसवासर नयनन गीड वहाई॥
दुरगंध मलीन सुनारि मनो, खिरकी यमधाम विरंच लगाई६१

सवैया।

रमणी रमणी नह रंचकहै, गुण औरनकै रमणी दरसाए॥
मुक्ताहलहारसुहेमतंटकह, कुंकमचन्दनलेप लगाए॥

(१) रमणी कहिये स्त्री रमणी नह कहिये सुंदर नहीं है किंतु और गुणोंके आरोपसें सुंदर देखनेमैं आतीहै सो गुणकौनहैं। (२) करणफूल॥

बहु फूलनकी गलमाल धरे, पुन पाट दुकूल शरीर सुहाए ॥
गति मंद हरे मन नारि नही,नरकाऽग्निचंडशिषा चमकाए ६२॥
जिह भूषन नारिनके झनकार, सुने मनहेरनको अकुलाए ॥
विनभाग तिसे सुविपत्ति परे,कनके हितसो पुन कानन जाए॥
मलिनांबर सूपधरे सिरपै, पिठरी पुनश्यामकरे लटकाए ॥
निश आवत हेर बजारविषे,कविसिंह गुलावनकोउ लुभाए ६३

दोहा ।

पापी काम चंडाल तूं, जो उर करें मलान॥
तौ व्याकुल जन होतहै, ऐसे करे बखान ॥ ६४ ॥

सवैया ।

यह कामनि मोहि चितारतहैं,पुन चन्दमुखी सुअनंद निहारे॥
दृग नीलसरोज सुपीन कुचा, सुअलिंगनके हित उदम धारे ॥
सठै कौनचहे तव कौनपिखे, युवती मलहाड सुमांस बिकारे ॥
सुपुमान अमूरति चेतनजो, तव हेरत मूढ नही तवसारे॥६५॥

प्रतिहार्युवाच ॥

सवैया ।

इत आवहु हेवडभागसुनो, तब दोन चले पग वेग उठाए ॥
इह राजनको अधिराजविवेक, समीप चलो तुम बेर मिटाए॥
तव जाइ समीप विचार कह्यो, जय देवनदेव वडे सुखदाए ॥
करुणाकरके इतओर पिखो, यह वस्तुविचार लगे तव पाए६६

(१) शिलाउंच्छ । (२)स्त्री हाडमांसका विकार होनेकर जड है, तिसमें इच्छादिकसंभवेनही तथापि स्त्रीमें जो पुमान् पुरुष अमूर्तचेतनहै सो तेरेको देखता है रे मूढ तेरेमें सार कछु नहीं यह भावहै ॥

सवैया।

सुविवेक कह्यो यहठौर निवास,करो श्रम आपन दूर निवारो॥
वस्तुविचार सुबैठगयो, पुन जोर दोऊकर कीन उचारो॥
यह किंकरदेव समीपअयो, करुणाकरके कछु आय सुधारो॥
सुविवेक कह्यो महामोहके संग, सुहोवतहै जगजंग हमारो ६७॥

सवैया।

मोहवली सुपताकनमै, प्रथमै सिरदार सुकाम बनायो॥
ता प्रतिवीर सुसैननमै, हमरे मनमै इक तूं जग आयो॥
मम धंनविचारकह्यो सुखते,भट कोटिनमै प्रभु मोहि बुलायो॥
मार करों सभखंड मनो जह, जंबुकपुंज सुखाइ अघायो ६८॥

राजोवाच॥

दोहा।

वस्तुविचार उदार, अति शस्त्रविद्या कौन॥
जांकर हने मनोज रण, मोहि बतावो तौन॥ ६९॥

विस्तुविचार उवाच॥

दोहा।

अहो पंचसर हाथमै, फूलनको धनु आहि॥
तांजीतनाहित शस्त्रकी, ग्रहण अपेक्षा नाहि॥ ७०॥

सवैया।

गढ देह मनोजके द्वारजिते, दृढ रोक करों तिह व्याकुल भारी॥
निजराखनहेत चिते अवला पुन, दूरहितेजु पिखे बहुनारी॥
तब मै परिणामसुदूषकहों, मलमूतभरीसु दिखावहु सारी॥
इहभांति मनोजकरों बलखीण, सुलेवहुतां क्षणभीतर मारी ७१॥

(१) शरीररूपकिलेके भीतर कामके आनेजानेकेलिये इंद्रियरूपी द्वार है॥

दोहा।

साधुसाधु भूपति कह्यो, बोल्यो बहुर विचार॥
जिहविध जीतों कामअरि, राजन सुनो प्रकार॥ ७२॥

सवैया।

पावनहै सरिता जगमै, घन कानन तीरविषे अतिछाए॥
कोमल सैल सिलातल है, गिरिवास इकंत महासुख दाए॥
जोसमवाक व्यासकथा, सत्संगतिभाग बडे जनपाए॥
तौकहि नारि मलीनहरे मन, और मनोज कहा उपजाए॥७३॥
कामको आयुध एक प्रधान,इहै अवला जगभीतर गायो॥
ताहि जिते पुन कामसहायक, उदम होवहिगो विफलायो॥
भंग करों जव कामसहायक, तौ यह प्राणतजे दुखदायो॥
कामसहायक जे जगमै, तिहनाम कहों सुसुनो मनलायो॥७४॥
चन्द सुचन्दन धौलखिपा, मधुपावली गुंजतफूल सुहाई॥
वागवसंत मयूर पिको पुन, श्यामघटा घन घोर लगाई॥
मंद सुगंध कदंब प्रभंजन, और शृङ्गारजु कामसहाई॥
नारि जिती तव जीतलए, सभ नाहिपिखों इनमैबलराई॥७५॥

दोहा।

अति विलंव नकीजिये, सुनो जगतके राय॥
आयसु मोको दीजिये, हनो काम रण जाय॥ ७६॥

सवैया।

सार असार विचार सिलीमुख, मैसुदशो दिशमाहि पसारे॥
सैन मथौं अरिमंडलकी, सुवने प्रभुके अब कारज सारे॥

(१) व्यासप्रणीत, शांतिके प्रतिपादिक वाक्यहै तथा सत्सङ्गति। (२) रात्रि।

कुरुसैन विमंथ्यसखा[1] हरिके, जिम सिन्धुपती[2] रणभीतर मारे ॥
कामकलंक हनोतिमही, प्रभु आयसुदेहुनलाइ सुवारे ॥ ७७ ॥

सवैया ।

परनारिरमे अपवाद घनो, सिर दंडसहे यमलोक गहेगो ॥
निजनारिमिले अनुकूल कहां, कछुदोप सुने उरमाहि दहेगो ॥
विनपूत महादुख चीतदहे, खलपूतभये भवधार वहेगो ॥
निपजे दुहिता[3] घरमाहि घनी, धंननाहिमिले दुख लाज गहेगो॥
याविध नारिनको सुखजो, क्षणएक भजे दुःख देवत भारी ॥
नारिन संगमते जन मूरख, घोरसंसार वहे बहु बारी ॥
धृगहै तिनको कछु पाइ विवेकजु, प्रीतिकरें पुन नारमझारी ॥
कविसिंह गुलावनहीनरते जग, साचकहों बहु नारि बिगारी७९
सुन भूप विवेक प्रसन्नभयो, मुख भीतर यों तिन कीन उचारी ॥
पटका[4] कटिभीतर खैंच कसो, सभ आयुध बीर सुलेहु सभारी॥
अब शत्रु सुजीतनहेतु चढो, सुकरे शिव आप सहाय तथारी॥
वस्तुविचार कह्यो जिम आयसु दुंदभवाइचढे वलधारी ॥ ८० ॥
तब भूपति फेर विचारकह्यो, सुन वेत्रवती सुभले मनलाए ॥
अब क्रोधके जीतनहेतु सुपावन, एक क्षमा तुम लेहु बुलाए॥
प्रातिहारनि फेरकह्यो विनवेर, करों प्रभुजो मुखमाहिं अलाए॥
वहुजाइ सिताब अई क्षणमै, सुक्षमा पुनआपनसाथ लवाए॥८१॥

सवैया ।

अतिसुंदर चीतगंभीर बडी, हगलाजभरे धर ओर निहारे ॥
इहभांति लसे मुखमंडलतां, नभकातक चन्दकला सभ धारे॥

(१) अर्जुन । (२) जयद्रथ । (३) कन्या । (४) दुपटा ॥

अतिपावन दीरघ हेर कविजन, सिंच सुधा उरताप निवारे ॥
इहभांतिक्षमासभलोकपिखी, अबआपक्षमा मुखमाहि उचारे८२

क्षमोवाच ॥

कवित्त ।

क्रोध अंधकारके बिकार उर भये अति,
भ्रुकुटी चढाइ खल फीके मुख बोलई ॥
नैनकरे लाल सुविसाल होठ डसे अति,
जरे अंगअंग सुभुजंग विषघोलई ॥
धीर जे गंभीरनीर सागरसमान अति,
भजे न विकार नहि रंच उर डोलई ॥
क्षमावंत संत भगवंतके महंत जन,
बोले मधुबैन जन अमी झकझोलई ॥ ८३ ॥
खेद न जबानको न शीसको महानदुःख,
चित्तको न ताप नहि देह दुःख पाइहै ॥
हिंसादिदोष बिन क्रोधको निफोट हनो,
क्षमा मेरो नाम जग मेरो जस गाइहै ॥
ऐसैतु अलाइ पुन दोनही समीपजाइ,
कहे प्रतिहारी क्षमा और समुझाइहै ॥
यही देवदेव सुविवेक भूप भारी अति,
चालिये समीप सखी पेखि हरषाइहै ॥ ८४ ॥

दोहा ।

क्षमा समीप सुजाइ पुन, जयजय देव उचार ॥
यह दासी आई क्षमा, वन्दों पाद तिहार ॥ ८५ ॥

---

(१) अत्यन्त ॥

सवैया।

सुक्षमा इहठौर निवासकरो पुन, वैठ क्षमा यह वात प्रकासी ॥
प्रभु आयुसु देहु विलंबकहा, जिहहेतु बुलाइलई यह दासी ॥
सुक्षमे यह संगरमाहि दुरात्म, क्रोध वडो सुभपंथ विनासी॥
भट औरनको मुखजोरतहै, सुक्षमे अवताहि करोतुम नासी ८६॥

क्षमोवाच ॥

दोहा।

देव अनुग्रह पाइ तव, महामोह रणनास ॥
मै सुकरो क्षण एकमै, कहा क्रोध तिह दास ॥ ८७ ॥

सवैया।

इह बेदन पाठ सुयज्ञतपो पुन, और जिते नर पुंन सवारे ॥
विनकारण वैरकरे दुष्टात्म, क्रोध सभो शुभपंथ निवारे ॥
सम लोह सुदेह तपावतहै पुन, नैननते जन आगि निकारे ॥
तिह क्रोधको मै इहभांति हनो,दुरगा महिषासुरज्यों रणमारे८८

दोहा।

वहुर विवेक बखानियो, क्षमे सुने हम कान ॥
जांउपाय क्रोधहि जने, वहु मम प्रगट वखान ॥ ८९ ॥

सवैया।

सुक्षमा कहि देव सुनो मनमै, नर क्रोधकरे तव मौन गहीजे ॥
वहि गारिवके मुखभीतरजो, पुन तांप्रति कोमलवाकभनीजे॥
जुधिकारकरे परे तिहपांइ आपद, पेरव महा करुणा उरकीजे॥
तनताडनमै हरपै उरमै, कृतपूर्वपाप सुमेअव खीजे ॥ ९० ॥

इहभांति विचारकरे निसबासर, ताहि सुक्रोध नहीं उपजाए॥
तव भूप शबासकही मुखते, सुक्षमे तव भाख्यो साच उपाए ॥
सुन देव जिते जव क्रोध बली, तव हिंसन पारुष मान बसाए॥
सभ जीतलए नहिं फेरलरें, इनकी भुज ना बल देतदिखाए॥९१॥

दोहा ।

कह्यो विवेक प्यानकर, रणमै शत्रु संहार ॥
सात्विक संपति देवियां, करें सहाय तथार ॥ ९२ ॥
क्षमा सुआयसु सीसधर, गई सुशंखबजाइ ॥
राजा प्रतिहारी कह्यो, लेहु संतोष बुलाइ ॥ ९३ ॥
महामोहभट लोभजो, ताको मारे सोइ ॥
तांविन प्रतिहारी सुनो, और उपाव न कोइ ॥ ९४ ॥
जो आयसु सोईकरों, प्रतिहारी इम जाइ ॥
ले संतोषको संग पुन, कीन प्रवेश सुआइ ॥ ९५ ॥
चित्त चितार सन्तोष पुन, दयारसिले नैन ॥
गुलावसिंह वहुवोलियो, सुनो ताहिके वैन ॥ ९६ ॥

सन्तोष उवाच ॥

सवैया ।

फल काननमांहि अनेक मिलें,विनखेद सदा तरुहैं सुखदाई॥
पुन नीर जहांतहं पूर रह्यो, अतिशीतल पुंन नदी मधुराई ॥
मृदुसुंदर पल्लवसेज बने, बिजनावन आप समीर झुलाई ॥
जन हा धनवंतनद्वारनमै, कृपण पुन खेद सहैं बहु जाई ॥९७॥

(१) हिंसा, कठोरवचन वा कटुवचन मान वा प्रभुता अधीन होवैहै ॥

जन मूरख ना मम चींतधरें, अतिमोहभये सठ देह तपाए ॥
वहुवार अरंभ भये भगना, जग फेर करे पशु नाहिं लजाए ॥
जिमकालरनीरभ्रमे हरणा, इतते उत मूरख त्यों जगधाए ॥
विन मोहिप्रसादन आशामिटे, हतवज्रसमान घनो विललाए९८

कवित्त।

लोभ अंधकार दृग याविध विकारभजे,
पांउ धन और कछु एतो अव पायोहै ॥
एतो थाप रापों एतो व्याजमै चलाऊं आगे,
मे पिता पितामेपुन याविध वढायोहै ॥
ऐसै धनध्यानकरे कालकी नसारपरे,
आश सुपिसाची पुन याबिध ग्रसायोहे ॥
बिनही सन्तोष जग लहे घनो दोष पुन,
गहे काल मूंड जाने लोक सुख पायोहै ॥ ९९ ॥

सवैया।

धन एक उपाइकरै नलहें, पुन एक वडे सुउपाइ मिलाए ॥
जु मिलाइ धरे धनभौन विषे, विनभाग सुभोगविना विनसाए॥
तुल्य वियोग उंभै धनकोघर, आइगयो वहु चित्त तपाए॥
याजगमाहि सन्तोष विना,कवि सिंहगुलावनको तृष्ताए१००॥
केश सुधौल भये शिरके, सुजरा जगसापिन डंक लगाए॥
तदपिमूढ चहे धनको, सुख हेतु कवीनाहि रामको ध्याए ॥

(१) संयोग वियोग ॥

बोधसुनीर अबोधजनी रज, लोभ भले जगमाहि मिटाए॥
सन्तोष रसामृत सिंधुविषे पुन, देडुबकी सुख पूरणपाए १०१॥

प्रतिहार्युवाच॥

दोहा।

एहु स्वामी भूपहै, चलो सुयाके पास॥
जाय सन्तोप समीप पुन, जयजय कीन प्रकास १०२॥
इहु सन्तोष प्रणाम प्रभु, करे सुचरण तिहार॥
भूपति कह्यो समीप इह, बैठो आउ हमार॥ १०३॥

कवि रुवाच॥

वरनो रूपसन्तोषको, बैठो सभामझार॥
सीतावर वर मैं चहों, बसो सुचित्तमझार॥ १०४॥

सवैया।

चित गंभीर मनोनिधि नीर, शरीर महाद्युति सोहतहै॥
दृग सिंच सुधारस शांतिकरे, इहभांति चहूंदिश जोहतहै॥
निज दौरदलै अरिमंडलको, भवमंडलमैं यश सोहतहै॥
कविसिंहगुलाब पिखे इहभांति, मनो सभके मन मोहतहै १०५

दोहा।

बहुर सन्तोष वखान्यो, आज्ञा देहु सुमोहि॥
भूपति कह्यो प्रसंग सभ, नाहि सुछानोतोहि॥ १०६॥
वेगबनारस जाहुअब, लोभहनो वलधार॥
कह्यो सन्तोष सुकरोअव, जो प्रभुकरो उचार॥ १०७॥

(१) ज्ञानरूपी जलकरके अज्ञान बहुललोभकर उतपन्न रजोगुणको धोयकर॥

सवैया।

मानव देव सुदैतसभै, जिह जीतलए जगभीतर सारे ॥
तापसमंडल विप्र हने, बहुभांतिनके पद संगल डारे ॥
तां खललोभको मैं इहभांति, हनों पुन संगर भूमिमझारे ॥
दाशरथीरघुवीरबलीजिह, भांतिसुरावणराक्षसमारे ॥ १०८॥

चौपाई।

ऐस बखान सन्तोष सुगयो। और एक नर आवत भयो ॥
देव विजयहित मंगलजेते। सभैमिलाइ लियाए तेते ॥ १०९॥

दोहा।

तरुण ज्योतिषि आइ कर, कहे महूरत सार॥
प्रस्थान भले अब कीजिये, विजयमहूरत धार॥११०॥
भूपति पुरुष बखान्यो, सैनापती बुलाइ ॥
कहु प्रस्थान अब कीजिये, शिवसुतपाद मनाइ१११॥
कहो सारथी जाइ अब, संग्रामक रथ आन ॥
कृतमंगल रथ बैठकर, बेग सुकरें पयान ॥ ११२॥

सवैया।

भूपकि आयसु जाइकही, सरदारनसों नहबेर लगाई ॥
सूत स्यंदन बेगअने रथ, भूपचढे सुगणेश मनाई ॥
ताहिसमै सरदार सभैचढ, वाहनसैन अशेष चलाई ॥
धुनिदुंदभकीजरजल्लभयो, सुप्रलेघनजानगरजेनभआई११३
मत्तगयंदन कोर सजी, भ्रमरावलीगंडनमाहि सुहाई ॥
जान सपक्ष चले गिरिपुंज सुबेग बडो अवनी गजछाई ॥

(१) कन्यादर्शनदध्यादि। (२) संग्राममे योग्य ॥

कांचनके झुलंवार लसें, गजश्याम भली उपमा मनआई ॥
दामनिपुंज सुसंगमनो, निस भादवकी घटहैं उमडाई ११४॥
श्वेतंवरूथ सुऊच बडे, घनसारदसें रथपुंज सुहाए ॥
वेग प्रभंजन जीत तजे, इहभांति तुरंगम स्यन्दन लाए ॥
ते रणरंगमही अति धावत, ता उपमा कवि कौन बताए ॥
धावनमे मन एक बली, कविसिंहगुलाब सुहेर लजाए११५॥

सवैय्या।

पैदलके बहु पुंज चले, रणमै सभके उमगे मनहै ॥
फैटनमै यमदाड कसी, सणखोलसंजोह सजे तनहै ॥
कुंतं सुदीरवहै करमै सुगुलाब कछू उपमा भनहै ॥
जान दिगंतर भूरखिरे, यह नीलसरो जनके बनहैं ॥ ११६ ॥
कोटन कोट सुबीर बली पुन, मांहि तुरंग अरूढ भयेहै ॥
मानहु भूमिनपाइ छुहे, नभमें हरिबाहन कोटिधएहै ॥
थर थल्लभयो दिगमंडलमैं, कर बीजुछटा करवार लएहै ॥
यों चतुरंगन सैन चली, सभके तनमै अति रूप नएहै ११७
मध्यविराजत भूपतिको रथ, मानहु मेरुइसो चमकाए ॥
वाजि खुरागर चूंबत भूमि, सुले रथमाहि अकाश उडाए ॥
योंधुनि होवतहै रथकी जनु, खीरनिधी हरि फेर मथाए ॥
धूरिकीपुंज अकाशचढे, पथऊर्ध्वहै रवि मंडल छाए॥११८॥

(१) झूल। (२) उच्छाड। (३) शरदऋतुके बादलसें। (४) प्यादोंके। (५) कटिवस्त्रमे कटारी कसीहै। (६) टोपसाहित कवच। (७) नेजा। (८) दिशायोंके अतर ॥

सूत उवाच ॥

कवित्त ।

राजनके राई सुनजीकआई एहु पिखो,
शिवकी बनारस सुदेत यों दिखाई है ॥
नीरयंत्रधार सुफुहारे जहँ अपार छुटे,
पावनी बनारसकी भूमि सुसुहाई है ॥
सौधनके शीश जन रचे जगदीश तह,
कांचन बनाइ लिपलेप चमकाई है ॥
जाहिकी अपार छवि हेर छवि छीनभई,
कहि सुगुलावचन्द किरणन लजाईहै ॥ ११९ ॥

सवैया ।

धौल पिखो ग्रह ऊच्च बने, जनुसारदमेघनपुंज सुहाए ॥
बीच पताक सुऊच लसे, सुमनो तडतागनकै चमकाए ॥
है मुक्तलाकृत वारजपुंज, सुगुंजतता मधुपावलि आए ॥
गंधकरें उदगार सुखो, मकरंदभयो झडसूर छपाए ॥ १२० ॥
फूल खिरे सुचुफेर पिखो, यह पावन भूमिसमीप सुहाई ॥
एहु पिखो घन छाइ मही, तरुपुंज किधो घटहैं उमडाई ॥
मारुत जाइ सुठौरविषे, जन पूजत शंभुप्रेम वढाई ॥
गोंवत फूल चढावतहै सुनिवावत वन्दत शीश निवाई॥१२१॥

---

(१) मन्दिरोंके शिखर । (२) सुफेद । (३) मुक्तामणिके किये । (४) वायुके संबन्धकर जो वृक्षोंका शब्द है तिसशब्दकर वायु मानो गावत कहिये शिवका जाप करे है और अपने आपसे जो वृक्षोंसे फूल गिरतेहै सोई मानो शिवजीको वायु फूल चढावताहै औ निवावत कहिये वृक्षोंको अपने बलसे वायु भूमिमे स्पर्श करावेहै तिस बहानेकर मानो शिवजीको वायु वन्दना करेहै ॥

आरद्रगंगको नीर करे पुन फूलपराग सुगंध चढाए ॥
गुंजत बीच सुभ्रंग फिरें, मिसताहि मनो शिवगीत सुनाए ॥
तरुलंबलता अति नाचतहैं, सुमनोभुजदंडनभाव दिखाए ॥
सारस हंस चकोर धुनी मिस, वायुमनो शिवपाठ सुनाए१२२॥

दोहा ।

पिख अनंद भूपति भयो, लागो करन उचार ॥
यह शिवनगरी पावनी, मुक्तिकरे संसार ॥ १२३ ॥

सवैया ।

तम हारद दूरकरे क्षणमै, पुन आनंद आतममै उपजाए ॥
विधुमोलपुरी मन अैंचतहै, सुमनो पद मोक्षहि ज्ञान लजाए॥
जिह ठौरविषे यह गंगभले, अति वक्रभई इहभांति सुहाए॥
जन हासकरे यह चन्दकला सुकिधोंधर मोतिनहार सुपाए१२४

सोरठा ।

रथते उतर सुसूत, दई अकरमाभूपकी ॥
पिख विवेक पुरुहूत, दीरघ आयुविसालमति ॥ १२५॥

सवैया ।

गंगक तीर सुधीर महामति, मंदरऊच सुमेर सुहाए ॥
आदिनारायण केशवको, यह पावन थान महात्म गाए ॥
भूप निहार अनंदभयो, मुखभीतरते यह वाक अलाए ॥
क्षेत्रकुआत्म एहुसुनो, सुपुराविद पंडित मोहि बताए॥१२६॥

(१) गगाकेनीरसेस्नानकरके । (२) तालस्वरतानादि । (३) स्तोत्रपाठ अन्य सुगम है । (४) हृदयगततम । (५) काशी मानो मोक्षका पद कहिये कारण है । (६) क्षेत्रमेहिमाके जाननेवाले व्यासादिकोंने पूर्व हमको क्षेत्राऽभिमानिदेवता केशव भगवान् कहाहै ॥

दोहा ।

याहिठौर तज देहकौं, मिले परात्म जाइ ॥
पुंनवंत जन लोकमैं, लहैं मरण इह आइ ॥ १२७ ॥

सूत उवाच ॥

दोहा ।

कामक्रोध पुन लोभलौं, भूपति हमे निहार ॥
देखो दूर पलातहैं, ज्योंकातर असिधार ॥ १२८ ॥
भूपति कह्यो प्रसाद हरि, सर्वसिद्धि जगहोइ ॥
कर प्रवेश भगवानके, मैं वन्दो पद दोइ ॥ १२९ ॥
रथते उतर प्रवेशकर, भूपति भले निहार ॥
भगवनभक्त कलेशहर, जयजय सदा तिहार ॥ १३० ॥

विवेक उवाच ॥

भुजंग प्रयात छन्द ।

सुरंचक्रचूडामणीदीपजागे ॥
करे आरती पादकंजं सभागे ॥
नखं जोतिशोभा लसे हेमपीठे ॥
मनो कोटिखद्योत चांदे सुदीठे ॥ १३१ ॥
भवं द्वैतसंभ्रांतिसंतानिताए ॥
तुमे द्वैत मेटो करो बोधछाए ॥
क्षमामंडलो धार संभार पीने ॥
लगी दाड कोटी गिरी चूरकीने ॥ १३२ ॥

(१) काशीक्षेत्रमें । (२) सुरमण्डल । (३) कोटखद्योताहीस्ववर्णविदुकी न्यांईदेखीतेहै । (४) संसारभेद भ्रांतिकी परंपराकर जो संनम्र है भक्तजन ॥

वलीयागमाही करे रूप भारी ॥
पदोंसाथ मापी त्रिलोकी सुसारी ॥
भुजादंडआगे गिरं छत्रलीने ॥
बलारातिको मान कीनो सुखीने ॥ १२३ ॥
त्रसतगोकुलं त्राणकारी दयाले ॥
टरीअंबवरपा करे गोपपाले ॥
सुरारातिभामासुसुंधूरशीशं ॥
सुसंध्याभ्रकांतं हसे देवईशं ॥ १२४ ॥
तिने दूरकारी मनो मारतंडं ॥
कहे कोविदा ईशतेदौरदंडं ॥
सुदैत्येंद्रवख्यातटी पाटनारी ॥
नखंश्रेणकानाथतेरी उचारी ॥ १२५ ॥
त्रिलोकीरिपूकैटभो कंठकाठं ॥
कटे चक्रधारा करे भूमिमाठं ॥
फुरे ज्योतिरुल्का भुजादामतेजं ॥
करेखीरशैनं सजे शेषसेजं ॥ १२६ ॥
सदा शंभुप्यारे महातेजधारी ॥
भुजादंडसंभ्रांतिशैलं मुरारी ॥
मथे खीरसिंधं भ्रमे बाहुपीने ॥
भयेलांछनं ताहिवीचंनवीने ॥ १२७ ॥

---

(१) इंद्र । (२) हिरण्यकशिपु । (३) कैटभदैत्यका स्थूल कंठ । (४) भूमिको एक रस किया । (५) मज्वलतज्योति । (६) भुजारूप दण्डेकर भरमताजो है मन्दराचल । (७) चिह्न ॥

सुमोतीफलोदारहारं सुहाए ॥
प्रभा कंठमध्ये सके को बताए ॥
महामोहछेदी दिजे बोधनार्थं ॥
नमो देवपादं दोऊजोर हाथं ॥ १३८ ॥

दोहा ।

आदिनारायण दीनवर, भये प्रसन्न उदार ॥
बोध बली सुत होइगो, भूपति भौन तिहार ॥ १३९ ॥
मंदरनिकस विवेक पुन, पिख इम कीन प्रकास ॥
यह नीको स्थान है, ईहा करौंनिवास ॥ १४० ॥

कवि रुवाच ॥

दोहा ।

सभासमेत सुएहु जव, पेखी भूपति रीत ॥
कीरतिवरसा देव तब, भयो इकागर चीत ॥ १४१ ॥
उपजेगो वैराग मन, आइ सस्वती दयाल ॥
बोधकरे मनको भले, ह्वैहै कथा विशाल ॥ १४२ ॥

इति श्रीमन्मानसिंह चरण शिक्षित गुलाबसिंह विरचिते प्रबोधचन्द्रोदय नाटके चतुर्थोऽङ्कः समाप्तः ॥

इति श्रीमदुदासीनवर्य्य परमानद शिष्य गुरुप्रसादविरचिता प्रबोधचंद्रोदय नाटक चतुर्थीऽकटिप्पणिका समाप्ता ॥ ४ ॥

ॐ श्रीगणेशाय नमः ।

अथ पञ्चमोऽङ्कप्रारंभः ॥ ५ ॥

दोहा ।

पदप्रसाद रघुनाथके, लहे बोध मतिमान ॥
हने मोहबलवानको, तिह बन्दो भगवान ॥ १ ॥
कीरतिवरमाभूपके, देखत सभामझार ॥
श्रद्धा कीन प्रवेश तब, लागी करन उचार ॥ २ ॥

श्रद्धोवाच ॥

सवैया ।

प्रसिद्ध सुपंथ अहे जगमै, यह जातिकुबैर वडो दुःखदाई ॥
क्रोध दवानलते जुवढी, क्षणमै सगली कुलजाहि षपाई ॥
ज्यों वनवांससंघ रसनते, पुनपावककाननखेहरलाई ॥
तिमहींग्रह बाधवक्रोधजले, दुखमूरभयो दृगतेजलजाई॥३॥
दुःखदेखनअंकलिखेबिधिभाल,सुआजपिखेनहिजातमिटाए
मम सोदरबन्धु हते रणमै, तन भूमिरुले किहठौर सिधाए॥
दुरवारण दारुण शोक महां, अतिपावकमें उर भूर जलाए॥
सुविवेककी मेह अनेक परे, क्षणपावकशोकनलाटबुझाए ४॥
सागर शैल मही सरिता, सभअंतकअंतसमे सुखपाए ॥
तौ त्रिणजीरणसें तनुमैं, जन कोविदको भवमै पत्याए ॥

---

(१) वेदबोधितफलका अवश्य भावित्व निश्चयका नाम श्रद्धाहै, ॥

यद्यपि यों सुविचारकरों, पुन तदपि शोक विवेक दवाए ॥
दीरघ शोककी ज्वाल वढे, विधहा उर अंतर मोहि जलाए॥
यद्यपि क्रूरस्वभावहुते, मम भ्रात चले कुपंथनमाही ॥
काम सुक्रोध तथा मदमान मुए सगले रणमंडल माही॥
तदपि दुःख कटे उरको, अरु देह सुकावत मैं जगमाही ॥
शोक दवानलज्वाल लगी मम अंतरआत्मकाननमाही ॥६॥

चौपाई

करकै मनकेमाहि विचार। श्रद्धा बहुरों कीन उचार ॥
विष्णुभक्ति उर परमदयाल। एसो मोप्रति कह्यो विसाल॥७॥

विष्णुभक्ति रुवाच ॥

शंकरछन्द।

इहठौर संगर होइगो भट करेंगे कुलनास ॥
मैंहरसाकों पापनहि मनमोहि भयो उदास ॥
अब छोडिके वनारसी मैं सालग्रामसु जांउ॥
भगवानके स्थान वसकर काल ताहि वितांउ॥ ८ ॥

दोहा।

श्रद्धे युध वृरतांत सभ, करीनिवेदन आइ ॥
सो मै सगलो ताहिढिग, करों निवेदन जाइ ॥ ९ ॥

भुजंगप्रयातछन्द।

तहांवेगश्रद्धासुनीकेसिधाई ॥
पिखेतीरथं गंडकापावनाई ॥
जहां आप देवो सदा वास धारे ॥
सुसंसारसिंधुं जनं पारतारे ॥ १० ॥

करी वन्दना ठौरनीके निहारी ॥
इही विष्णुभक्ति जनं मोक्षकारी ॥
मिली शांतिसंगं कछू सोविचारे ॥
चलों याससमीपं कहों सर्वसारे ॥ ११ ॥

दोहा।

विष्णुभक्ति अरु शांति पुन, वरीसभामहि आइ ॥
विष्णुभक्तिको कहेगी, शांतिसुकछु सुनाइ ॥ १२ ॥

शांति रुवाच ॥

दोहा।

देवी तोकों मै पिखों, चिंताकुल उरमाहि ॥
विष्णुभक्ति मोको कहो, कौनहेतु मनमाहि ॥ १३ ॥

विष्णुभक्ति रुवाच ॥

सवैया।

वत्से सुवनारससांहि महारण होवत मोहविवेकहिकेरो ॥
जिहठौर सुबीर अनेकमरे सुमनो यमराजकरे सुनिवेरो ॥
तहि मोहबलीसहि वालविवेक भिरे रणमें बहुभांति घनेरो ॥
नाहिजानत तांगति कौनभई इहकारणते उर कंपत मेरो ॥१४॥

दोहा।

कह्यो शांतिकहाचिंतहै, तोहिकृपा जवहोइ ॥
तव विवेक जीते सही, मै जानो यहलोइ ॥ १५ ॥

---

(१) वृतान्त। (२) इंद्रियनिग्रहका नाम शांति है। (३) जडाऽनृताहकारादिकोंसें रहित सत्यज्ञानानन्दाऽकारप्रत्यक्चेतनकू विषयकरनेवाली जाअन्तः करणकी वृत्ति है ताकानाम विष्णुभक्ति है ॥

दोहा ।

यद्यपि वत्से ऐंवहै, संतनको कल्यान ॥
जांपतहै अनुमानते, तदपि संक महान ॥ १६ ॥
अबलौ श्रद्धा नहिअई, समाचारले पाहि ॥
यांते पुत्री मनविषे, वड़ो संदेह सुआहि ॥ १७ ॥
ताहिसमे श्रद्धा अई, लागी करन उचार ॥
विष्णुभक्ति मोकोमिलो, पुत्री भुजापसार ॥ १८ ॥
विष्णुभक्ति श्रद्धा कह्यो, सुखसों आई माइ ॥
श्रद्धा कह्यो प्रसाद तव, कह कलेश जनपाइ ॥ १९ ॥
कह्यो शांति कर जोरकै, अंब नमो पद थार ॥
श्रद्धा कह्यो सुगलमिलो, पुत्री भुजापसार ॥ २० ॥
शांति मिली गलमैं तबै, भयो अनंदवृतांत ॥
विष्णुभक्ति बोली तबै, श्रद्धे कहहु वृतांत ॥ २१ ॥
देवीतेंप्रतिकूलको, जोकछु लायकहोइ ॥
सोवृतांत ऊहांभयो, और नजानो कोइ ॥ २२ ॥
विष्णुभक्ति पुन तिहकह्यो, मोकोकहि विसतार ॥
गुलावसिंह श्रद्धा तहा, लागी करन उचार ॥ २३ ॥

श्रद्धोवाच ॥

सवैया ।

भागवती सुनतूंजवही, तह केशवमंदरते निकसाई ॥
प्रातभयो फुन ताहिसमै, रश्मीरविकोमलजोनिसराई ॥
दुंदभ भेरि निशानवजे, सुप्रलयघनकी धुनि जाहि लजाई ॥
वीरसुसिंहसमानगजे, वर तीमुखकातरकोपियराई ॥ २४ ॥

(१) जाणीताहै ॥

खुरवाजिनऔरथनेमिदली, धरचूरणधूरअकाशउडाई ॥
धर जान विरंचिसुलोकचली, नहि जानपरे रविलीनछपाई॥
गज कुंभसंधूर सुभूर सजे, तिनकी इहभांति सुकोरैंवनाई ॥
जनसांझसमैदिगपश्चमते, यहलालघटाउमडीअधिकाई २५॥

कवित्त।

अपनी पराई मिल आई सैन दोऊजव,
गजैवीर ऐसे जन प्रलयघन आएहैं॥
भेदके सुवेलैमानो लोकनके सुखेदहित,
पश्चमसु पूर्वके सिंधु उछलाएहैं॥
राजनकेराय सुविवेक योंठराइ मन,
दूरसननैयायिकको दूतकै पठाएहैं॥
जैसे रामचन्दसुतवालिके पठाए तिन,
जाइ महामोहकों सुवाक योंसुनाएहैं॥ २६॥

सवैया।

तजके हरिमंदिरसंतरिदे, सरितातट पावनकानन सारे॥
तुम जाइ मलेच्छनमाहि वसो, इहभांति सुरायविवेक उचारे॥
नहि जो पुन धार कृपाणहते सभअंग गिरें धरमाहि तुमारे॥
तव जंबुक श्रोणत पानकरें पलैं गीझ चरेंरणभूमिमझारे॥२७॥

विष्णुभक्ति रुवाच ॥

दोहा।

मात प्यारी शशिमुखी, मृगनैनी बलिहार॥
तिहते वहुरो क्याभयो, मोको करो उचार॥ २८॥

(१) पंक्ति। (२) कीनारे। (३) शास्त्र। (४) मास॥

श्रद्धोवाच ॥

सवैया ।

पुन मोहमहीप सुन्यो जबही, त्रिकुटीभ्रुकुटीखलताहि चढाई॥
अति क्रूर सुक्रोध महानभयो, दृग लालकरे इहबात अलाई ॥
सुविवेककरे दुष्टात्मताफल, याहिपिखे इमदूत सुनाई ॥
रणहेत परवंडको आगमजो, खल मोह बली तब दीनपठाई२९

छप्पयछन्द ।

याअवसर पुन आपनी सैन अगारी आई ॥
श्रीसरस्वतीपद्महाथशशिकांतसुहाई ॥
वेद[१] वेदांग पुराण धर्म पुन शास्त्र सुजेते ॥
भारतलौ इतिहास संगमिल आए तेते ॥
पिखतां प्रताप अरिसैनबल गयो निखल सकुचाइ अति ॥
सुन ज्यों अतिपावन धारपिख दिव्यधुनी जग पापगति ॥३०॥

विष्णुभक्ति रुवाच ॥

दोहा ।

मात प्यारी शशीमुखी, मृगनैनी बलिहार ॥
तिसते वहुरों क्याभयो, मोको करो उचार ॥ ३१ ॥

श्रद्धोवाच ॥

तब देवी आगमजिते, वैष्णवसूर्यआदि ॥
गये सरस्वतीपास सभ, पूर शंषधुनि नाद ॥ ३२ ॥

---

(१) ऋग्, साम, यजु, अथर्वण, ये चारवेद ॥ आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, अथर्ववेद, ये चार उपवेद ॥ शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दो, ज्योतिष, ये षट् वेदके अंग है ॥ नारदपञ्चरात्र, रुद्रयामलादिक, ये आगम हैं ॥ मत्स्यमार्कण्डेयादि अष्टादश पुराण हैं ॥ मन्वादि अष्टादश स्मृति ये धर्मशास्त्र हैं ॥

विष्णुभक्ति रुवाच ॥

मात प्यारी शशीमुखी, मृगनैनी बलिहार ॥
तिसते बहुरो क्याभयो, मोको करो उचार ॥ ३३ ॥

श्रद्धोवाच ॥

कबित्त ।

सांख्य औ न्याय सुकणादकृत भाष्य पुन,
आगम अनेक सुमीमांसा[1] संगलियाईहै ॥
युक्ति अपार मानो भुजाही हजारफुरें,
दिशाको मिटाइतम जंगहुलसाईहै ॥
धर्मेंदुआनन[2] सुवेदत्रयी संग मनो,
तीननैनहूं[3] सोंकात्यायनी सुहाईहै ॥
सरस्वतीके आगे प्रगटानी सुसहायइत,
बिजुरी अनेकजनु आई चमकाईहै ॥ ३४ ॥

शांति रुवाच ॥

दोहा ।

स्वभावविरोधी आगम, तरक तथा पुन जान ॥
मिले कथं रणहेत सभ, माता करो बखान ॥ ३५ ॥

श्रद्धोवाच ॥

समानवंशते[4] जेभये, लरे परस्पर सोइ ॥
जो परसों पुन रणपरे, संगाति ताकी होइ ॥ ३६ ॥
तिमहम वेदप्रसूत सभ,कछु विरोध निजमाहिं ॥
बेदसुरक्षणहेत पुन, सभ इकत्र होइजाहिं ॥ ३७ ॥

(१) ये सारे मीमांसाके विशेषण हैं। (२) धर्म वेदाऽर्थसोई भया इन्दु (चन्द्रमा) तद्वत् है मुख जिसका। (३) तीनवेद है नेत्रजिसके। (४) यथा कुरुपांडव ॥

नास्तिकपक्ष निषेध हित, संगतभई हमार ॥
आगममाहि विरोधनहि, कीनो तत्त्वविचार ॥ ३८ ॥
शांतिअनंत सुज्योतिजो, अद्वैअजबल एक ॥
मायाके बहु संगमिल, भासे रूप अनेक ॥ ३९ ॥
नानाआगमपंथ बहु,एक जनावत ईश ॥
ज्यों बहुनदीप्रवाह जल, मिले जाइ वारीश ॥ ४० ॥

विष्णुभक्ति रुवाच ॥

मात प्यारी शशिमुखी, मृगनैनी बलिहार ॥
तिसते बहुरों क्याभयो, मोको करो उचार ॥ ४१ ॥

श्रद्धोवाच ॥

सवैया ।

तब युध आरंभ भयो दुहूंते, रण आपसमै करि कुंभमिलाए ॥
सुतुरंगमसंग तुरंग जुरे, रथसंग रथी सुप्रहार लगाए ॥
सरपुंज पदाति चलाइ इसे, जनतोयद रोषभरे बरषाए ॥
अतियुध भयानक भूर भयो, डर कातरवीर महांहरषाए॥४२॥
तह श्रोणतकीसुभई तटनी, बहुभूत पिसाच सुकंक सुहाए ॥
सरदार तुरंग मतंग बडे, जगदीश मनो तन सैल बनाए ॥
सिर छत्र सुहंस समान फिरे, सितपागसुफेनमनो चमकाए॥
अतिबीर बली तह नक्रभये, पिख कातरतां उरमै दहलाए४३॥

चौपाई ।

याबिध दारुण भयो संग्राम । पखंडागम इम कीन सुकाम ॥
लोकायतको तंत्र सुजोई । कीनो सैन अगारी सोई ॥ ४४ ॥
परस्परं दोनोदल जुटे । मुए लोकायत प्राण सुछुटे ॥
बहुर पखंडागमहे जोई । भये निर्मूल सगल तिहसोई ४५॥

सोमसिद्धांत कपालक जोई। सत्य आगम पिख भाग्यो सोई॥
सत्यआगम इहुआइ वखानी। सुनो ताहिकी साची बानी॥४६॥
सद्भवभेपज करें वखान। ते मतिमंद सुमहा अजान॥
मनुस्मृतिलौ आगम जेते। सुने नमूढन कानन तेते॥४७॥
तथोचस्मृतिः—सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिबेत्।
तेन निर्दग्ध कायस्तु मुच्यते किल्विपात्ततः॥ १ ॥

चौपाई।

सत्य आगम प्रवाह वहाए। सौगत काशीछोडि पलाए॥
परोसीक औ सिंधुगंधारे। अंग वंग पुन मगध पधारे ४८॥
मलेच्छप्राय कलिंगादिक जेई। तामे जाइ वसे पुन तेई॥
और पखंड दिगंवर जेते। गये पंचालदेशको तेते॥४९॥
मालव और अभीर अनिरता। सागर मारूदेश त्रिगरता॥
विचरे तामै गूढ स्वभाए। मंदरसेवक द्वारवनाए॥५०॥
नास्तकतर्क अहै पुन जेती। दलीमीमांसा पाइन तेती॥
तां अनुपथ मै वही सिद्धाई। जहां पखंड दुरे जगजाई ५१॥

विष्णुभक्तिरुवाच॥

दोहा।

मात प्यारी शशिमुखी, मृगनैनी वलिहार॥
तिसतें बहुरो क्याभयो, मोको करो उचार॥५२॥

(१) मनुस्मृति, अर्थ यहः—द्विजकहिये बाह्मण रागसें वा प्रमादसें सुरापानकरके अग्निवर्णवाली सुराका पानकरे तिस सुरापानकरके दग्ध शरीर हूआ तिसपापसें छुटिजावेहै।
(२) ये सर्वदेशोके नामहैं॥

श्रद्धोवाच ॥

चौपाई।

बहुरों वस्तुविचार उदारे। काम बली रणभीतर मारे ॥
क्षमा क्रोधगहिके सप छाऱ्यो। हिंसादिकको मूल उखाऱ्यो ५३
सन्तोषलोभकोई उरण माऱ्यो। ज्यों रघुपति दशकंठ संहाऱ्यो ॥
त्रिष्णा चोरी मिथ्यावैन। परिग्रहसहित उडाएगैन ॥५४॥
अनसूया मत्सर जिती, नीके शंखबजाइ ॥
परउत्कर्षहिभावना, मदको दीन खपाइ ॥ ५५ ॥

विष्णुभक्ति रुवाच ॥

दोहा।

भलाभया अरिगन मूए, संगरभूमिमझार ॥
महामोहवृतांतजो, मोको करो उचार ॥ ५६ ॥

श्रद्धोवाच ॥

दोहा।

योग(१)उपसरगनसंग पुन, महामोह खलजोइ ॥
लीनभयो कहि कंदरे, जापतनाही सोइ ॥ ५७ ॥

विष्णुभक्ति रुवाच ॥

चौपाई।

मोह अनरथहि कारण जोई। रहियो सेषयह भली नहोई ॥
पुरुष विवेकी जो(२)सुरज्ञान। जोचाहे अपनी कल्यान५८॥

---

(१) योगविघ्नसंग। (२) देवज्ञानी ॥

दोहा।

अग्नि ऋण अरु शत्रुको, देवे मूल उषार॥
रहे सेष काहुसमै, वहुर देहि दुखभार॥ ५९॥

चौपाई।

मनको समाचार है जोई। श्रद्धा कहो प्रगट मोहि सोई॥
श्रद्धा लागी करन वखान। विष्णुभक्ति सुनिये देकान ६०॥
मूएपूत अरु पोते सारे। भयो दूखमन चीतमझारे॥
शोकवेगमन भूरि वहायो। जीवन त्याग सुतिहठहिरायो ६१
विष्णुभक्ति मुखमै मुसकानी। वहुरों याविध कीन बखानी॥
जो मनमरे सुजगतमझारे। तो सभ कार्य होहि हमारे ६२॥
पुरुष सनातनहै जगजोई। परमानंद सुपावे सोई॥
परदुष्टात्म मनहै जोई। जीवनत्याग कहांतिन होई ६३
श्रद्धा वहुर सुकीन बखान। विष्णुभक्तिमें भाख्यो मान॥
वोध उदेहित तूं दृढहोई। वेगमरे मनरहे नकोई॥ ६४॥
विष्णुभक्ति कर अंगीकार। बहुरोंलागी करन उचार॥
वैरागउत्पतिहित योंकीजे। व्योंसस्सरस्वती तहां पठीजे६५

दोहा।

भई सुअंतरध्यान वैहु, ऐसै मुखो अलाइ॥
मनसंकलपसु दोन पुन, बरे सभामहि आइ॥ ६६॥

---

(१) सो शास्त्रमेंभी कहाहैः—अत्यादरपरो विद्वानीहमानः स्थिरां श्रियम्। अग्नेः शेषं ऋणाच्छेषशत्रोः शेष नशेषयेत्॥ अर्थयहः—अत्यंत आदरयुक्त विद्वान् निश्चलसंपत्तिकूं इच्छाकरताहुआ अग्निकेशेषकूं ऋणकेशेषकूं शत्रुकेशेषकूं अवशेष नछोडे अर्थात तिसतिस समयमें दूरकरे। (२) व्यासप्रणीतवाणी। (३) विष्णुभक्ति तथा श्रद्धा॥

सवैया।

मन नैननते अतिनीर बहे, पुन मुंड धुने मुख एहु अलाई ॥
कहि पूत गए तज मोहि ईहां, इकवारसु देवहु फेर दिखाई ॥
कहि राग गयो कहि द्वेषगयो, मदमानमुए कछुसार नपाई ॥
मम अंगनमें दुःखआगिबले, इकबारमिलो गलभीतर आई ६७
इहठौरनवृद्धजहाजकोऊ मम, शोकसमुंद्रहिते गहि तारे ॥
सुअसूयतेआदिसभे दुहिता, किहठौरगई नअहे कछुसारे ॥
तृष्णादिकजे सुतनारिहुती, किहभांतिमुई सभलोकमझारे ॥
बिनभागसुमें दुखभूरभये, इकवारमुए सवबन्धु हमारे ॥६८॥
अब ब्याकुल मेउर भूरभयो, विष पावक जानलगी उर आए ॥
अति दूखभयो तनुछीदतहै, दुःखशोकदवानल देह जलाए ॥
मम आज विवेक सुलोपभयो,सुत मोह महा उरमाहि बढाए॥
अब जीवनमें जग दूरभयो, तनतापबडो उरमोहि तपाए ६९

दोहा।

यों नृपसभामझार मन, भई मूरछा भार ॥
आइसंकल्प सुतिहकह्यो, राजन देह संभार ॥ ७० ॥
सावधानमन होइ पुन, बोल्यो यों मुखमाहि ॥
कहां प्रवृति सुनारि मम, देत दिलासा नाहि ॥ ७१ ॥
सुन संकल्प दृग नीर अति, लागो करन उचार ॥
देवप्रवृतिसुकहा अब, ढूढों जगतमझार ॥ ७२ ॥
कुटंव शोकदवदाहिसों, दग्धारिदे अतिहोइ ॥
खेह उडी तनकी सुनो, मुई जगतमै सोइ ॥ ७३ ॥

मन उवाच ॥

चौपाई।

हाप्यारी किह ठौर सिधाई। भयो दूख मोको अधिकाई ॥
स्वप्नेभी मोहिसंग पियारी। हमेनहोती रंच न्यारी ॥ ७४ ॥
आज भागविन दूर सिधाई। जीवनमोहि भयो दुःखदाई ॥
तदपि जीवो पापी भार। गिरियो मूरछा धरनमझार ७५

संकल्प उवाच ॥

राजन सावधान अतिहूजे। होनीमाहि विषादन कीजे ॥
भयो स्वस्तमन देह संभार। कहे संकल्पहको सुउचार ॥ ७६ ॥

मन उवाच ॥

चौपाई।

सुत अरु दारावियोग सुजोई। जाहिभयो दुःख जानत सोई ॥
अव जीवनकी चाहन मोकों। मरों वेग इम भाषत तोकों ॥ ७७॥

दोहा।

चिता वनावो वेग अव, करोंसु अनल प्रवेश ॥
शोक अनल दुःख दाहजो, मेटो सकलकलेश ॥ ७८ ॥
याविध व्याकुलमनभयो, पायो बहुत कलेश ॥
तवै सरस्वती आइ पुन, कीनो सभाप्रवेश ॥ ७९ ॥

सवैया।

श्वेतदुकूल धरे तनमै, मुख सारदचन्दसमान सुहाए ॥
कर एकविषे सभ आगमहै, पुन एकविषे मणिमाल फिराए ॥
पुन दोनविपै अभैवरदान, महाभुजसुंदर चार सुहाए ॥
वैन मयूषन आतमको, तम दूरकरे उरताप मिटाए ॥ ८० ॥

सरस्वती उवाच ॥

चौपाई।

विष्णुभक्ति मोको सुपठायो। सखी सरस्वती मन दुख पायो ॥
संतानवियोगभयोदुःखभारी। करो जाइ तिह बोध उदारी ॥८१॥
मनको जिहबिध होइ बैराग। तसो यतनकरो बडभाग ॥
सो मै अब मनकी ढिगजावों। तहाँजाइ वैरागउ पावों ॥ ८२ ॥
गई सरस्वतीमनढिगआकुल। कह्यो पूत क्यों भयो व्याकुल ॥
पूर्वहीते लख्यो प्रभाव। सभे अनित्य अहै जगभाव ॥८३॥
अध्ययनकीयेतेंनिखलइतिहास। भारतलौ सभकथा प्रकास ॥
कलपशतायु अहे जगजोई। मरे अंत चतुरानन सोई ॥ ८४ ॥
इंद्रलौ सुर असुर सुजेते। मरें अंतको सगले तेते ॥
मनुआदिकमुनि मही समुंदा। नष्टकरे क्षण कोट मुकुंदा ॥८५॥
अहो मोह काते तव भयो। जाते बडो शोक उरछयो ॥
नष्टशरीर नष्ट जब होई। कोविद् शोककरे नह कोई ८६॥
भाव अनित्य सदा उर धारो। नित्यअनित्य सुवस्तु निहारो ॥
नित्य अनित्य विवेकी जोई। शोकवेग तिह छुहे न कोई ८७॥

तथाच श्रुतिः ॥

एकमेवं यदा ब्रह्म सत्यमन्यद्विकल्पितम् ॥
को मोहस्तत्र कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ २ ॥

(१) जलदी। (२) अर्थ यहः—जहाँ अखण्डाद्वितीयब्रह्मही सत्य है औ ब्रह्मसें भिन्न सर्व विकल्पित है नाम अनिर्वचनी है इसप्रकार एकत्वकूं नाम परमार्थकूं जानतेहुये जीवनमुक्तिको तहाँ कौनमोह है कौन शोक है न कोई मोह है न कोई शोक है मोहाऽभावात् शोकोपि नास्तीत्यर्थः ॥

मन उवाच ॥

दोहा।

शोक वेग दूषतभयो, देवी चीत हमार ॥
लहे बिवेक सुठौर नाहिं, मेरे चीतमझार ॥ ८८ ॥

सरस्वती उवाच ॥

चौपाई।

घूत सनेह दोषहैं भारी। जाते होइ अनरथ विकारी ॥
विषवलीवीजन सम जानो। करे कलेश अंतको मानो८९॥
सुत अरु नारी प्यारे जान। कीजे तहाँ सनेह महान ॥
बज्र अग्नि जाके उर अंतर। उपजे वेगदूषके अंकुर ॥ ९० ॥

दोहा।

ताते शोक अनेक द्रुम, उपजे जगतमझार ॥
दूष अनल तनदाहकर, करे चीतको छार ॥ ९१ ॥

मन उवाच ॥

दोहा।

देवी यदपि ऐंबहै, तदपि शोक सुभार ॥
मेउर अंतरको दहे, सकौनप्राणसुधार॥ ९२ ॥
सरस्वती तें पदकंज जो, जीवनको सुखदैन ॥
भलाभया प्राणांतमे, सो पेखे निजनैन ॥ ९३ ॥

सरस्वती उवाच ॥

दोहा।

यह इक और अकाज सुत, चाहतहै वसमोह ॥
जो आत्म निज हननको, कीनो निश्चे तोह ॥ ९४ ॥

चौपाई।

काम सुलोभादिक सुत जेते । अति अपकारी जानो तेते ॥
इनहित संचो कीजे जोई । करे अनरथ अंतको सोई ९५ ॥
संचेहित जन अतिदुःखपाए । कामलोभ बहुपाप कमाए ॥
लोभ जबै उरमै हुलसाए । नदी अनेक सुगहन तराए ९६॥
अतिऊचे पुन सैल चढाए । कानन घोरमाहि भरमाए ॥
धनमदमलनक्रुर मुख राजे । खडो कराए तिह दरवाजे ९७॥
भने क्रुर भूपति मदभीने । हाथजुराइ करावत दीने ॥
यों अपकारी तें सुत जेते । तांहित लहें कलेश सुएते ९८॥

मन उवाच ॥

चौपाइ।

है योंही ज्यो सुखो वखाने । तदपि मे दुख और न जाने ॥
तिनके ललत बोल रिदहारी । चिरंकाल रिदमाहि चितारी ९९
मनोप्राणको होइ विछेदा । याविध मै पावों उर खेदा ॥
याविध सुनि मनकी दुखवानी।कहे सरस्वती सुखोभवानी १००

सरस्वती उवाच ॥

दोहा ।

ममेताकी जन वासना, प्रेमसहित दृढहोई ॥
तिहमूलक अतिमोहवस, दुःखपावत जन लोई ॥१०१॥
ग्रहकुकटको खाइ मन, जव मंजारग्रह आइ ॥
ममताके वस होइ तव, दूखघनो जन पाइ ॥ १०२ ॥

(१) तुमको दुखदाई । (२) मदीयत्वाऽभिमानका नाम ममता है तिसकी जावासना कहिये सर्वदा काल वर्तणा सोई है मूल कहिहै कारणजिसका महामोहका तिसमहामोहके वस यहदोहाका तात्पयार्थ है । (३) मुरगा ॥

ममता सून सुग्रह चटका, औ मूसाखाइ विडाल ॥
बिनसनेह दुख नाहि सुत, होवत हर्ष विसाल॥ १०३॥
सर्वअनरथसुवीज सुत, ममताही जगजान ॥
तां छेदनके माहि पुन, करो यतन मतीमान ॥ १०४ ॥

मन उवाच ॥

चौपाई।

मेतनते सुतथे उपजाए। कुकटमूसासम किम गाए ॥
ताको नास जने दुःखभार। कहे सरस्वती बहुर विचार १०५

सरस्वती उवाच ॥

चौपाई।

यातनते यूका उपजाए। औ व्रणकृमी नहिजात गिनाए॥
यतन सहित ताको नरघाए। दूख न रंचक मनमै पाए१०६॥
यूका कृमि सुत होइ समान। एकनको उर जान संतान ॥
महामोह एकनमै धार। मुए मूढ दुख लहे अपार १०७

मन उवाच ॥

चौपाई।

तम अज्ञान ग्रन्थहै जोई। दुहउछेद जानो मैसोई॥
सरस्वती तूं सर्वज्ञ उदार। लोकनमै जस आहितुमार१०८
निरंतर कीनो दृढ अभ्यास। सनेह सूतजीवनको फास ॥
जाते फास इहै तुटिजाइ। देवी कहो सुमोहि उपाइ १०९॥

सरस्वती उवाच ॥

चौपाई।

भाव अनित्यसु उरमै धारो। प्रथम उपावसु यही निहारो ॥
बिधिसमागम अहेसु जोई। बिजुलीचमतकारसम होई ११०

दोहा।

ऐसे उरमै धारतूं, करो सुदृढ अभ्यास ॥
होहु सुखी सुतलोकमे, कटे मोहकी फास ॥ १११ ॥

मन उवाच ॥

दोहा।

देवी तोहिप्रसादतें, नष्टभयो मम मोह ॥
पर उरमाहि संदेह इक, पूछतहो अब तोह ॥ ११२ ॥
तव मुखचन्दमरीचते, सुधाझरे उपदेश ॥
क्षालत मैं उर मलन पुन, हरहे शोक कलेश ॥ ११३ ॥
शोक सुमूल प्रहारको औषध जो जगहोइ ॥
तापत मैं उरमलनको, मात बतावो सोइ ॥ ११४ ॥

सरस्वती उवाच ॥

चौपाई।

कहें मुनिश्वर सर्व बिचार। मरमभेदते शोकप्रहार ॥
ताहि निवारण औषध इहे। चिंता उरसे मूल नगहे ॥ ११५ ॥

मन उवाच ॥

दोहा।

कह्यो तुमारो ससत्यहे, परचिंता है दुर वार ॥
चिंता चित्त डुला इहे, ज्योंजलइंदुब्यार ॥ ११६ ॥

---

(१) पदार्थ। (२) कतर्व्यउपदेशका नाम विधि है। (३) मर्मभेद कहिये दुःखके करनेवाले जे शोकमहार है ॥

सरस्वती उवाच ॥

चिंता चित बिकारसुत, देवे बहुत कलेश ॥
काहूं शांति[१]सुविषे मै, कीजे ताहि निवेश ॥ ११७ ॥

मन उवाच ॥

तुम प्रसन्न अति होइ उर, मोको देहु बताइ ॥
ताको ध्यानसु मै धरो, दुखपुंज मिटजाई ॥ ११८ ॥

सरस्वती उवाच ॥

दोहा।

हे सुत यहअतिगोपहै, करेजु बन्धनमोप ॥
पर आरतउपदेशमैं, कहेन आगम दोष ॥ ११९ ॥

सवैया।

नव नीरद श्याम विसालमहा, उरहार भुजासु कियूर सुहाए ॥
मकराकृत कुंडल काननमै जुगनैनसरोज मनो विगसाए ॥
जनमाहि निदाघसुसीत सरोवर, वेद सदा जिह ब्रह्मबताए ॥
हरिध्याव सदा मनतूं उरमै, निज सूखलहैं दुखपुंज मिटाए१२०
सुनके मन दीरघस्वास लयो करजोर दोऊपदशीशझुकायो ॥
भवभेषज मात सुतोहिकह्यो भवसिंधुवह्यो तबमोहि वचायो ॥
करुणारस नैन विसाल द्रवे, पुन सारस्वती गह हाथ उठायो ॥
सुतलाइकतूंउपदेशहिकी, अवनीठभयोइममेमनआयो१२१॥

चौपाई।

हेसुत औरप्रकारह कहों। तव संसारमोह सभ दहों ॥
जेतोमोह सुजामै होई। अंतजने तेतो दुख सोई ॥ १२२ ॥

---

(१) शांति विषय कहिये शोकमोहादि रहित ब्रह्मविषयमें ॥

पितातने वाधव पति भाई। काल जवै गहि शीशलिजाई॥
तव मूरखजनअतिदुख पावै। खोहिसिरोरुह धूडरुलावै॥१२३॥
ताडे उर दृगते जलवहैं। पेख विवेकी यों उर कहैं॥
यह संसार वडो दुखदाई। यामै चीत गडो मत राई॥१२४॥
दृढवैरागसुजांउर होई। समसुख लहे आपमै सोई॥
सरस्वती इम जवै अलायो। ताहीक्षण वैरागसु आयो॥१२५॥

वैराग उवाच॥

सवैया।

हाविधि एक विडंवकऱ्यो, जिहते सभलोक सुतोहि ठगाए॥
एनवनीलसुनीरजपे सैलपांतदलंसम देहवनाए॥
श्रोणत मांस सुमेद वसा, तिनऊपरते तुच अंवर छाए॥
कैकरुणावसनात्रवायसचीलव्याघरजातसुखाए॥ १२६॥

दोहा।

सर्वओर श्रोणत मिल्यो, आमिखपिंड निहार॥
परे सुवायस चील वहु, कोकरसके निवार॥ १२७॥

सवैया।

कह उ...
ताहि निवारण...नसभो, पुन औरसलेपम भांजन भारी॥
निकसै अरु नाहि संभार सुपोचि उत्तारी॥
कह्यो तुमारो सहको, वहिनाहि निहारसके तव नारी॥
चिंता चित्त डुला इरे, सठजानतनाहिइहैकछुसारी१२८

(१) पदार्थ। (२) कतर्व्यंउप. तिसका जो पांत कहिये अग्रभाग पेसलकहिये दुःखके करनेवाले ने शोकमहार है॥

चौपाई।

लोल दोले सम भोग सुहाए। जरा प्रणाम भये दुखदाए ॥
विपदाको यह गेह पछानो। धनको नास परमदुखमानो १२९
जितेलोक सभदेवहि शोक। अवला अहे अनरथन ओक ॥
याहि घोरसंकटपथमाही। हाहाजीव अज्ञलपटाही॥१३०॥
योंभाषत वैराग सुआयो। सारस्वती तव बैन अलायो ॥
हेसुत आयो यह वैराग। आदरकरो सुतिह बडभाग १३१
कहांपूत मन एहु उचाऱ्यो। वैरागसमीप सुतिह अनुसाऱ्यो
तातचरण अब तें दरसाए। यह वैरागसु लागत पांए१३२॥

मन उवाच ॥

जन्मसमे तब दरसन पाए। फेर पूतकहु कहां सिद्धाए ॥
मेरे कंठ मिलो सुत पिआरे। मिले वैराग सुभुजापसारे १३३
तब मन याविध बैन अलायो। तैं पेखत मम शोक पलायो ॥
वैराग वहुर मनको योंकहे। कहा शोकको अवसर अहै१३४
ज्यों पथभीतर पथेक मिलाए। समापाइ पुन बीछुरजाए ॥
ज्यों त्रिणकाठसु नदीप्रवाहा। कबीमिले कबहोहि दुराहा१३५
ज्यों जलबूंद मेघकी धारा। यथा जहाजसु सिंधुमझारा ॥
पिता मात सुत बंधु सुदारा। मिले बिछुरेयाजगतमझारा१३६
याको होइ वियोग सुजवहीं। शोकनलए विवेकी तबहीं ॥
ईहा जगतकी गतिहै जोई। कोटनमाहि लखै नर कोई१३७
पूर्वहुतो तात नर जोई। मरकर भयो पूत सुत सोई ॥
पूत तातहित पिंड कराए। तात पूत कहिगो दखिलाए१३८

---

(१) डोला वा हिंडोला। (२) राही। (३) संयोगजोहे सो वियोगजन्यही है॥

दोहा।

तोहि पिता महिं मुएको, भये वरष सुत तीन ॥
हम भूमंडलमै वसैं, वहु भये अमरपुर लीन ॥ १३९ ॥

चौपाई।

कवहूं मर पर लोक सिधाए। कवहूं ग्रह भीतर उपजाए ॥
विनगतिजाने मूरख रोवे। विवेकी शोक नरंचक जोवै१४०
ऐसे वचन सुने मन जवहीं। भयो अनंद चीतमें तवहीं ॥
सारस्वती जैसे यह कहै। सत्य वात एवेंही अहै ॥ १४१ ॥
अबमैनीके लयो निहार। जूठो अहै सगल संसार ॥
नबजोबन नारी है जेई। मधुकरसहित खिरे द्रुमतेई१४२॥
फूल मालती वहुत सुगंध। पसरे जह तह पौन सनबंध ॥
मृगतृष्णासायर जल जैसे। भयो विवेक पिखोअब तैसे१४३
वहुर सरस्वती करुणा वान। मन प्रति लागी करन वखान ॥
यद्यपि यों तव भयो सुभान। तदपि वत्स कह्यो ममंमान १४४
गिरही एक महूरत वीर। विनआश्रम नहोवै धीर ॥
ताते अहे निवृतिसुजोई। धर्मचारणी कीजे सोई॥१४५॥
जैसै मंगलकरइ सनान। फूलमाल सिरऊपर ठान ॥
मले कपूरकुंकमपट भीने। बाजे संग अनेक सुलीने १४६॥
व्याही तव प्रवृति सुनारि। त्योंनिवृति कर अंगीकारि ॥
शिषा[१]सूत्र अब तजो बिसाल। होइ दिगंबरकै मृगछाल १४७॥

---

(१) तथा च ब्रह्मोपनिषच्छ्रुतिः ॥ सशिखंवपनं कृत्वा बहिः सूत्रं त्यजेद्बुधः ॥ यदक्षरं परं ब्रह्म तत्सूत्रमिति धारयेत् ॥ १ ॥ सूचनात्सूत्रमित्याहुः सूत्रं नाम परं पदम् । तत्सूत्रं विदितं येन स विप्रो वेदपारगः ॥ २ ॥ अर्थ यहः—सन्यासेच्छु बुद्धिमान् पुरुष

संतनसंग सो भले बिचार । वसो इकांतसु विपिनमझार ॥
वन नवनीलसरोज सुलोचन । गहोनिवृतिहोयभवमोचन १४८
लाजसहित मन करे उचार । देवी कहहुसु अंगीकार ॥
वहुर सरस्वति करे अलाप । मनके निखल मिटावे ताप १४९

दोहा ।

समदम सतसंतोषलौ, उपजे पूत तुम्हार ॥
सेवा तेरी वैकरे, सगलेदुःख निवार ॥ १५० ॥

चौपाई ।

यम अरु नेमआदिकहै जेते । तोहि वजीर होहिंगे तेते ॥
ब्रह्मचर्य जो अहे महान । मंत्र कहेगो तेंढिगआन १५१ ॥

दोहा ।

विबेक उपनिषत संगमिल, यौवराज सुखसार ॥
तोहिअनुग्रहते लहे, शांतिपूत उरधार ॥ १५२ ॥
मैत्रीआदिक चार यह, बहिनि मनोमलहार ॥
विष्णुभक्ति तोपै पठी, आदर इने सुधार ॥ १५३ ॥
सरस्वती आय सुजो करो, धरीशीश मम सोइ ॥
योंकहि शीश झुकाइयो, गहे चरन कर दोइ ॥ १५४ ॥
आयुष मत सादरापिखो, यह संगत सुखकार ॥
यम नेम आसन सहित, प्राणायाम सुधार ॥ १५५ ॥

—शिखासहित मुंडन करवायके बाहरले सूत्रका त्याग करे जो अक्षर परब्रह्मरूपि सूत्रहै तिस सूत्रको धारणकरे काहेतें; सूचनसे परब्रह्महीं सूत्रहै ऐसे कहतेंहैं इसलीये सूत्रनाम परम पदका है सो सूत्र जान्याहै जिसने ऐसा जो विप्र सो वेदपारगामि होताहै अर्थात् वेदके तात्पर्यको जाननेवाला होताहै ॥ १ ॥ २ ॥ युवराजकर्मका नाम यौवराजहै सो युवराजकर्म यहहै अपने जीतेही राज्याभिषेकको देना ॥

दीरघायु इनसंग तुम, अवै लहो सुखसार ॥
सामराज निजलोकमै, नीके करो उदार ॥ १५६ ॥
तोहि इकाग्रहुंभये, जीवं लहे सुखसार ॥
तव चंचलता संग वस, पाए बहुतं विकार ॥ १५७ ॥
सागरवीचीभेदते, ज्यों रवि नाना होइ ॥
बुद्धिंवृत्ति वस जीव बहु, भयो परात्म सोइ ॥ १५८ ॥
वृतां सकल संकोचकर, वत्स तू सनीधार ॥
सहिजानंदसु आत्मा, लहेरूप निजसार ॥ १५९ ॥

चौपाई।

ग्यातीबंधु जिते रणमारे। प्रेतपतिके भौन सिधारे ॥
जलतिलांजुली ताको दीजे। देवनदीमै मज्जन कीजे १६० ॥
सुन मन नैन न नीर वहायो। बहुरो याविध वैन अलायो ॥
जोकछु आयुसु अहे तिहारी। करों सकल मैसिरपरधारी ॥

दोहा।

सारस्वती मन भाखि, योतजी रंगंप्रवृति ॥
कीरतिवरमा देव तव, गहीचीत निरवृति ॥ १६२ ॥

---

(१) परमात्मभावको प्राप्त होवैं। (२) षट्विकार। (३) सो परमात्मा बुद्धिवृत्तियोंके अधीन होयकर नानाजीवरूपमें प्रतीत होवै है तथा च श्रुति. ॥ एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः। एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥ अर्थ यहः—एकही भूतात्मा (परमात्मा) भूतभूतमें स्थित हुआ तथा एकप्रकारका हुआभी जलमें चन्द्रमाकी न्यांई बहुतप्रकारका देखाजावैहै इति। (४) नाटकप्रवृत्ति ॥

सोरठा।

जेनहै पूत प्रबोध, उपनिषतसु विबेक मिलि ॥
साधन बडो निरोध, जीवनमुक्तिसु होइगी ॥ १६३ ॥

इति श्रीमन्मानसिंहचरणशिक्षित गुलाबसिंह विरचिते प्रबोधचन्द्रोदयनाटके वैराग्यो नाम पञ्चमोऽकः समाप्तः ॥ ५ ॥

---

(१) यह षष्ठमअङ्कका बीजहै ॥

इति श्रीमदुदासीनवर्य्य परमानंदशिष्य गुरुप्रसादविरचिता प्रबोधचंद्रोदयनाटक पञ्चमांऽकटिप्पणिका समाप्ता ॥ ५ ॥



ॐश्रीगणेशाय नमः ।

अथ षष्ठोङ्कः प्रारंभः ॥ ६ ॥



दोहा ।

याउपरंत सुहोयगी, जीवनमुक्ति रसाल ॥
सभामाहिं प्रवेशतव, कीनो शांति विसाल ॥ १ ॥

शांति रुवाच ॥

चौपाई ।

नृप विवेक इम मोहि अलायो । समाचार शांतितें पायो ॥
मन सुत कामादिकथे जेई । मुए महारणभीतर तेई ॥ २ ॥
मोह विलीन वैराग्य उपाए । पंचेकलेश सुदूर मिटाए ॥
मन प्रशांतिकी संगति धार । ततबोध नरकरे विचार ॥ ३ ॥
तुम उपनिषदपास अव जावो । आदरकर तिहममढिगल्यावो ॥
योंकहि शांति सुजवै पधारी । श्रद्धा आवत ताहि निहारी ॥४॥
हरषहेर इम शांति उचारे । यहश्रद्धा कछुमंत्र विचारे ॥
इही ओर यह आवत नीकी । सुनो भला अव याके जीकी५॥

---

(१) जीवन्मुक्तिका लक्षणः—श्रवणादिकोंकरकै उत्पन्न भयाहै ब्रह्मसाक्षात्कार जिसकूं तिस ब्रह्मवेत्ताकूं जाग्रीवत अवस्थाविषे कर्तृत्वभोक्तृत्वादिरूपसर्ववन्धप्रतीतिकी निवृत्ति है ताकानाम जीवन्मुक्ति है । (२) (अविद्याऽस्मितारागद्वेषाऽभिनिवेशाः क्लेशाः) मिथ्याज्ञान का नाम अविद्या है, १ बुद्धि तथा आत्माके ऐक्याध्यासका नाम अस्मिता है, २ विषयकी इच्छाका नाम राग है, ३ साधनसहितदुःखमे अप्रीतिद्वेष है ४ मरणसें भयकानाम अभिनिवेश है ५ ॥

दोहा।

श्रद्धा तबै प्रवेशकर, कीनो इहै विचार॥
नैनसुधा पूरतभये, भूपतिकुंलहि निहार॥ ६॥
जहांदुष्टनीकेहने, पूजेसंतसमादि॥
वशैअनुजीवीसेव्यहे, स्वामिदेव अनादि॥ ७॥
शांतिकहे अंबा सुनो, कौन सुमंत्र विचार॥
करेचीतकहिहैंचली, मोको करो उचार॥ ८॥

श्रद्धोवाच॥

दोहा।

मैं विवेककेढिग चली, पठीपुरुष मतिमान॥
पुरषविवेक मिलाओगी, मंत्र इहै उरठान॥ ९॥

शांति रुवाच॥

दोहा।

कहो पुरुषको कौनविध, मनसों वरतन आहि॥
काराग्रह बांधेविषे, ज्योंवरते नरनाहि॥ १०॥
कहो पुरुषहीं करेगो, सामराज जगमाहि॥
अहेशांति इउहीं सुनो, ज्योंसमुझे मनमाहि॥ ११॥
कैसै मायामाहि अव, देव अनुग्रह आहि॥
निग्रह यों कहिवोरह्यो, कहें अनुग्रह काहि॥ १२॥

(१) राजकुलको। (२) राजकुलमें मोहादिक। (३) वशकहिये शमादि कर्णकर अनुजीवीकहिये ईश्वरके अनुपश्चात् है जीवना जिनोंका सो कहिये वशअनुजीवी ऐसे जे जीवहैं तिन जीवोंकर स्वामीदेवअनादि सेव्य है नाम पूज्यहै। (४) श्रद्धा कहतीहै हेशाति निग्रह ऐसा तेरेको कहना रहाथा, (उचितथा) परंतु अनुग्रहऐसै कैसाकहती है काहैते॥

देवमाहि माया अहे, सर्वअनरथनवीज ॥
ताको निग्रह भलेकर, कियोचहे निरवीज ॥ १३ ॥

शांति रुवाच ॥

काराग्रहमै डारमन, माया निग्रहकीन ॥
कहो काहिमै अवअहे, भूपतिको उरलीन ॥ १४ ॥

श्रद्धोवाच ॥

दोहा।

नित्य अनित्य विचारमै, सदा चितपरवाहि ॥
इह अमुत्र वैराग्यजो, वही सुहृद सुआहि ॥ १५ ॥
मंत्री अहे यमनेमही, सम दम सखा सुजान ॥
मैत्री करुणादिक सभे, यही ग्रहदासी मान ॥ १६ ॥
है मुक्तेच्छा सहचरी, भये पुरुष वलवंत ॥
ममता मोह संकल्पसह, हने कृपा भगवंत ॥ १७ ॥

शांति रुवाच ॥

दोहा।

कहो स्वामी पुरुषकी, धर्मकर्मफलमाहि ॥
किहिविध अहे प्रवृतिअव, मै समुझों मनमाहि ॥ १८ ॥

श्रद्धोवाच ॥

सोरठा।

जादिन भयो वैराग्य, पुत्रीलेदिन ताहिते ॥
इह अमुत्र फलत्याग, स्वामीधारे ताहिते ॥ १९ ॥

(१) सहकारी है। (२) सखीहै। (३) अर्थ यहः—जीवरूपस्वामी पुरुषकी धर्म रूपकर्मके फलमें प्रवृत्ति किसप्रकारकीहै यहकहो ॥

दोहा।

पापनके फल नरकतें, जैसै डरपै नीत॥
त्योंही सुखहै पुंनफल, स्वरगभयो भयभीत॥ २०॥
सुकृतको फल भोगसुख, मिले कदाचित् जोइ॥
करै गिलानि सुउरविषे, अधिक नमाने सोइ॥ २१॥
प्रत्यंक्प्रवण पिखपुरुषको, सफल आपनिरधार॥
धर्म आपही होइयो, सनै स्थल व्यापार॥ २२॥

शांतिरुवाच॥

दोहा।

जे उपसरंगसुसंगलै, भयो लीन खल मोह॥
कहो वृतांत सुताहिको, जननी पूछो तोहि॥ २३॥

श्रद्धोवाच॥

दोहा।

मधुमत्तविद्यासहित पुनि, पठे मोह उपसरग॥
लोभनिमित सुपुरुषको, दिखलाए वहुस्वरग॥ २४॥
जो तिनमाहि आसक्त पुन, पुरुष कदाचित होइ॥
तौ विवेक उपनिषतको, स्मरनकरे न कोइ॥ २५॥

शांतिरुवाच॥

दोहा।

मात प्यारी शशिमुखी, मृगनैनी बलहार॥
तिसते बहुरो क्याभयो, मोको करो उचार॥ २६॥

(१) स्वामीपुरुषको आत्मैकनिष्ठाकूं देखकर सोधर्म कीयाहै वैराग्यरूप फलजिसने ऐसा अपने आपकूं मानकर स्वयं आपही व्यापारसें रहित होताभया। (२) योगविघ्न। (३) काचित् सिद्धि॥

श्रद्धोवाच ॥

चौपाई।

तव उपसर्ग पुरुष ढिगगए। कौतुक एक करत पुन भये ॥
इंद्रजालकी[1] विद्या जोई। लोभहेत दिखलाई सोई॥ २७॥

दोहा।

निखलसिद्धि प्रगटी तहा, पिखी पुरुष मनलाइ ॥
गुलाबसिंह प्रभावतहि, नीके देत सुनाइ ॥ २८ ॥

सवैया।

शतयोजनते सभवातसुने, पुन नीरनपै विन नावचलाए ॥
विन ध्येनकिये सभ वेदपुराण, सुभारतलौ इतिहास सुआए॥
विनछन्दपढे सुभछन्दनके, भवमंडलमै सवकाव्य बनाए ॥
सुजराउजरेसुरथानपिखे, सभलोकनको रुचिप्रेर चलाए २९॥
दृढभीतनते निकसे क्षणमै, तनु मेरुसमान सुभूर वनाए ॥
तनुकंटकपै समतूल रहे, क्षणमै रविमंडलमाहि सुजाए ॥
इहभांति निहारत देवनजू, ढिगआनभलेपद मोल झुकाए॥
इहठौर स्वामिन वासकरो, दुखद्वंदसभै अब तोहि मिटाए ३०

दोहा।

ईहा जन्म नमृतहै, यह अतिसुंदर देश ॥
ईहावैठ कलोलकर, मनके हरो कलेश ॥ ३१ ॥

दोहा।

विद्याधरी अप्सरा, विविध सुग्धै[2] सुरनार ॥
ते पदवन्दनकरतहैं, हाथ उपाइनधार ॥ ३२ ॥

(१) कोई सुदर रूपवाली इंद्रजालिकविद्यानाम अविद्यमानार्थका प्रकाशरूप विद्या।
(२) स्त्री या वा मोहनरूप ॥

सवैया।

याहिपिखो तुम सुंदरता, मदमत्तविलोचन रूप अपारे ॥
दीरघ वारज गंधमिली, अलकै कचघुंघरवंत सुकारे ॥
पीनपयोधर रंभैउरूकमलानन अंजननैन सवारे ॥
दाडमसीरदपांतिबनी, समदामनि हासहरे तमभारे ॥ ३३ ॥
हाटककी सिकता धरनी, पुन इंद्रसी नीलमणि धनलाई ॥
एबनपांति नृतांतखिरी, वहुफूल सुगंध चहूंदिश छाई ॥
गुंजत एमधुपावलिया, मनवावलियासुमनोजचलाई ॥
संग विलासनि केलकरो, तपसा तव पुंनफले अबआई ॥३४॥

शांति रुवाच ॥

दोहा।

मात प्यारी शशिमुखी, मृगनैनी वलिहार ॥
तिसते वहुरों क्याभयो, मोको करो उचार ॥ ३५ ॥

श्रद्धो वाच ॥

दोहा।

सुन उपसर्गनवाकको, कीनो पुरुष उचार ॥
अतिसुंदर यह भोगसुख, मोमन वाढियो प्यार ॥ ३६ ॥
संकलपक्रियो उत्साहमन, स्वामीपुरुष उदार ॥
योंमतिसुन उर खेदगहि, करे सुशांति उचार ॥ ३७ ॥

शांति रुवाच ॥

दोहा।

हाधिग हादुख कष्टअति, भई बडी अवहान ॥
पुनरपि जगफासीविषे, पऱ्यो सुपुरुष महान ॥ ३८ ॥

---

(१) केला। (२) रेतीं ॥

मात प्यारी शशिमुखी, मृगनैनी बलिहार ॥
तिसते वहुरो क्याभयो, मोको करो उचार ॥ ३९ ॥

श्रद्धोवाच ॥

चौपाई।

तव तांमीत पुरुष इकसार। तर्क[1]नाम तिहकरें उचार ॥
क्रोधभरे दृग ताहि सुलाल। मनो समीर सखों[2] सुविसाल४०
तिन उपसर्गन ओर निहार। वहुरपुरुषको कीन उचार ॥
यहै अस्थानी देव सुजेते। विघनकरें तुमको प्रतितेते४१ ॥
श्रद्धा यावचननकेमाही। मीत कदाचित कीजे नाही ॥
थानअभिमानी[3] देव सुजेते। है अतिधूरत वंचक तेते ॥४२॥
विषयँवडसापिंडीको[4] डारे। मीनसमान निखलजन मारे ॥
भोगनकी चिंता दुखआग। डारे तोहि न लखे अभाग४३॥

सवैया।

एह अतिसुंदर नारि जितीनरका[5]ऽग्निकी सुशिषा पहिचानो॥
ताहिकि संगमते दुःखजोवहु वारलयो कहितोहि भुलानो॥
तेंतप दीरघ नीतकरे, सभलोक वखानत तोहि स्यानो ॥
भोगनपावकते हटियो, दुःखनाहिभरो सुकह्यो मम मानो४४॥
भवसागरतारणयोग्य जहाज सुतें चिरकालहिते अव पायो॥
मदमत्तविलोचननारि दिखाइ सुचाहतहैं सुरतोहि छुडायो॥

(१) सत् असत् विचारका नाम तर्कहै। (२) अग्नि। (३) मधुमत्तसिद्धि अभिमानी देवते। (४) विषयरूप मांसयुक्तकांटा। (५) मनुष्यशरीर॥

अब छोडि जहाज अंगारनदी सुचहेंकिम आत्म आप बहायो ॥
इह सीष सुनो समपीकमलीनसुभोगनहेर कहा हुलसायो ४५
डार पटंवर अंबरधार दिगंबर जावन वास कएहै ॥
माहि अरण्य करें तपदीरघ, भोगमहानल पारभएहै ॥
नाम महामुनि जाहि कहें, अरु कांपत भूपतिपांइ पएहै ॥
नारि सुघूमनघेरविषे, पर फेर रसातलमाहि गएहै ॥ ४६ ॥
वहुवारभयो नरनारि तुही, इहबार कहांसु अघाइ रहेगो ॥
अव याहिजहाजते पांउखिसे, भवसागरधारसु फेर वहेगो ॥
अव हाथ अलंवत मोक्षअहै, इह औसर मीत न फेर लहेगो ॥
कविसिंहगुलाब नमानत जो, नरकाऽग्निमै वहुदुख सहेगो४७

शांति रुवाच ॥

दोहा ।

मात प्यारी शशिमुखी, मृगनैनीवलिहार ॥
तिसते बहुरो क्याभयो, मोको करो उचार ॥ ४८ ॥

श्रद्धोवाच ॥

दोहा ।

तव तांवचनन कानधर, विषय नस्वास्ति उचार ॥
मधुमत्तविद्यामोह तज, भयो वैराग उदार ॥ ४९ ॥

सवैया ।

भोगनके दुख चीत चितार, सुशीश धुन्यो मन ताहि उठायो ॥
आज महादुखसिंधुविषे, परतो मम मीत सुतोहि बचायो ॥
फेर भजों नहि भोग कबी, इह मीत सुनो तव साच बतायो ॥
इमभाषभले दृग लाज बढी, भरअंक भले सुसखा गललायो५०

(१) विषमहै विषयमवाह जिसका ॥

शांति उवाच ॥

चौपाई।

भलाभया बहुपुरुष उदार। भयो विरक्त कटे दुःखभार ॥
तूं अब मातसु कहां सिद्धाई। मोको नीके देहु बताई ॥ ५१ ॥

श्रद्धोवाच ॥

दोहा।

पुरुष पठाई मै चली, हेरन आज विवेक ॥
जावों भूपविवेकढिग, मेटिसु विघन अनेक ॥ ५२ ॥

शांति उवाच ॥

चौपाई।

मोकोवी पुन रायविवेक। पठ्यो सुकारज भाषे एक ॥
उपनिषतलियावनहेत पठाई। चले सुवेग विलंब मिटाई ॥ ५३ ॥

कवि उवाच ॥

दोहा।

विवेक उपनिषत समीपवहि, श्रद्धा शांति उदार ॥
गई जबै बहुपुरुष पुन, आए सभामझार ॥ ५४ ॥
करविचार उर हर्ष अति, लागो करन उचार ॥
गुलाबसिंह बहुवाकपुन, सुनो साध उरधार ॥ ५५ ॥

पुरुष उवाच ॥

दोहा।

अहो महातम है बडो, विष्णुभक्तिको लोइ ॥
जांप्रसादबन्धनमिटे, मुक्तिजीव जग होइ ॥ ५६ ॥

सवैया ।

जिहंमाहि कलेश वडीलहरी, सुभयानक जाहिके पंथ अपारा ॥
सुत मीत कलत्र सुबंधु सखा, मकराग्रह ग्रन्थ बडे सुबिकारा ॥
निजक्रोध महावडवानलहै, तृष्णानिजनागनिरूपसुकारा ॥
हरिकी भक्ती पदकंजप्रसाद तऱ्यो भवसागरमैं अजभारा ॥५७॥

दोहा ।

तर्क वडो मम मीतहै, होयो मोहि सहाइ ॥
पावक भोग करालते, लीनो मोहि वचाइ ॥ ५८ ॥

कवि रुवाच ॥

दोहा ।

उपनिषत शांति दोनो तबै, कीनो सभाप्रवेश ॥
कीरतिवरमा मोलमणि, वैठो जहाँ नरेश ॥ ५९ ॥

शांति रुवाच ॥

दोहा ।

चलो सखी सुविवेकका, बदन निहारो आज ॥
भाग तुमारे जागया होहि सभे तव काज ॥ ६० ॥

उपनिषदुवाच ॥

दोहा ।

सखी स्वामी निरदई, जाहि त्याग्यो मोहि ॥
ताको मुख किहविध पिखौं तूं मनभीतर जोहि ॥ ६१ ॥

---

(१) यहां रूपकालंकार है ॥

शांति रुवाच ॥

दोहा।

देवी स्वामी परोथो, परम विपदके माहि ॥
इहविध एहु उलाहनो, तूं भाषतहै ताहिं ॥ ६२ ॥

उपनिषदुवाच ॥

सखी न देखी दुरदशा, मोपर बीती जोइ ॥
जाकर ऐसै तूंकहैं, सुनो बखानो सोइ ॥ ६३ ॥

चित्रपदाछन्द।

भुजदंडतोडिकुपंडितामणिकंठकीबहुफोर ॥
करकाढिकंकणलीतियाकररहीमैबहुशोर ॥
चूडामणिममशीशतेकटिदीनबहुतकलेस ॥
समद्रोपतीकेशांतिमेरेखैंचियातिनकेस ॥ ६४ ॥
कुछ अरथ मेरो औरथो, बहु करहै औरप्रकार ॥
जीवकाके हेत मूरख तोडिफोडि उचार ॥
अर्थको सुअनरथभाखैं देहि बहु संताप ॥
बहुभांति मैं दुखपाइयो नहिडरें ते सठपाप ॥ ६५ ॥

(१) कुत्सित पण्डतोंने मेरे मनन तथा निदिध्यास न रूपदो भुजादंड तोड डारेहैं तहां ब्रह्मरूप विषयसे भिन्न विषयका जो मनन है तथा निदिध्यासन है सोई भुजाओंका तोडना है, धारणा ध्यान समाधिरूप कंठकी मणिहै सोभी ब्रह्मरूप विषयसें भिन्न विषयका धारणा ध्यान समाधि करनाहीं तिसका फोडना है—उपक्रम उपसंहारादि रूपं जे वेदांततात्पर्यके षट् लिंग हैं, सोई भये कङ्कण तिनकोभी वेदांततात्पर्यकूं छोडिकर अन्यार्थकेतात्पर्यपर लगावना यही तिनका लैना है—चूडामणि कहिये शिरभूषणकीन्याई आत्म स्वरूप तिसका जो विमीत निश्चय है यही शिरसें काटदेनाहै—केश कहिये वेदांतभाग (उपनिष द्भाग) तिसको जो अन्यार्थपर लगाना सोई केशोंका खैंचना है द्रोपतिवत् यह छन्दका तात्पर्य है ॥

दुर्[1]विदग्ध अनेक मोको मिलेलोक मलीन ॥
विवेकपतिविन जान मोको चहें दासीकीन ॥
कें[2]चित कहें जग सत तूं सुखकरो इह प्रकास ॥
कें[3]चित कहैं मतद्वैतमै उपनिपत तूं कर वास ॥ ६६ ॥
इकँ[4]कहें जीवपरेशको है भेद एहु वखान ॥
इं[5]क कहें भेदाऽभेदको उपनिषत तूं उर मान ॥
इह भांतिव्याकुल मै करी नाहिलखै मूरखबात ॥
ज्यों दुष्टकौरवसभामै भई द्रौपदी विष्यात ॥ ६७ ॥

शांतिरुवाच ॥

चित्रपदाछन्द ।

महामोहके अपराधते तैं लह्यो है दुख सोइ ॥
देवको अपराध नाही होनहारी होइ ॥
मोह मन उपजाइ कामसुपुरुषको गहि लीन ॥
डार विषयआरण्यमै सुविवेक दूरहिकीन ॥ ६८ ॥
कुलनारिके यहधर्म देवी रच्यो भगवान ॥
संपद सुआपदमै सदा वहुचहे निजपति प्रान ॥
अब आउ दर्शनदेहु नीके मिष्टपियाप्रतिबोल ॥
अब फले तोहि मनोरथा सभ हते द्वेषी टोलि ॥ ६९ ॥

उपनिषदुवाच ॥

दोहा ।

पु[6]त्री गीता यों कह्यो, मोहि इकंत विठाइ ॥
स्वामी भरता पुरुषको, करो तोष अबजाइ ॥ ७० ॥

---

(१) दुष्टबुद्धि । (२) साख्यमतवाले । (३) मीमांसक । (४) नैयायिक । (५) त्रिदण्डी । (६) उपनिषत् अर्थकी प्रतिपादिकताकर वा उपनिषत्सकाशतें उत्पत्तिहोनेकर गीताको उपनिषत्का पुत्रिपणा है ॥

प्रबोधपूत तव होइगो, वन्धनदये निवार ॥
परस्वामीप्रति कहनते, आवत लाज सुभार ॥ ७१ ॥

शांतिरुवाच ॥

दोहा ।

विष्णुभक्ति सुविवेकको, कीनो इहै उचार ॥
पेखो स्वामी पुरुष अव, काहेकरैं विचार ॥ ७२ ॥
उपनिषत कह्यो ज्योंकहितहै, सोइकरों वडभाग ॥
गुलाबसिंह दोनो तवी,. गई अखाडो त्याग ॥ ७३ ॥
तव विवेकराजा सुनो, श्रद्धासहित सुहाइ ॥
मोहपटलको दूरकर, वऱ्यो सभामहि आइ ॥ ७४ ॥

विवेक उवाच ॥

दोहा ।

श्रद्धे शांति सुगई है, उपनिषतनिहारनकाज ॥
किहविध प्यारी को पिखों, मोहि वखानो आज ॥ ७५ ॥
देवसुआय सुथारीया, गई शीस परमान ॥
विष्णुभक्ति पुन शांतिको, कीनो एहु वखान ॥ ७६ ॥
मंदरनाम सुसैलमै, है हरिको अस्थान ॥
तह गीताके निकट वहु, बसत तर्क डरमान ॥ ७७ ॥

विवेक उवाच ॥

तर्कविद्याते कहो, कैसै तिह डरभार ॥

श्रद्धोवाच ॥

देव उपनिषत करेगी, तोको एह उचार ॥ ७८ ॥
अब तुम चलो समीप प्रभु, लेवो पुरुष निहार ॥
वैठ इकंत सुध्यायहै, तोहि आगमन उदार ॥ ७९ ॥

तव विवेकढिगजाइकै, कीनो पुरुष प्रणाम ॥
कह्यो पुरुष तव एहु सुत, कीनो भलो न काम ॥ ८० ॥
ज्ञानवृद्ध तुम हो वडे, हमको पितासमान ॥
यही अर्थ ऋषिदेवता, पूर्व कीन वषान ॥ ८१ ॥

चौपाई।

एकसमे आपदके मारे । भूले निगम देव ऋपि सारे ॥
तिनको एक वाल थो जोई । तीर सरस्वती वसियो सोई ॥८२॥

दोहा ।

दधीचऋषीसर पूतवहु, जन्यो सरस्वतीमाहि ॥
नाम सारस्वत ताहिको, धन्यो जगतकेमाहि ॥ ८३ ॥

चौपाई ।

मात सरस्वती तिह प्रतिपाल । रहे कंठ तिहवेद बिसाल ॥
तवते समापाइ ऋपिजेते । पूछे परस्पर वेद सुतेते ॥ ८४ ॥
जव तिन कंठन किने निहारे । तवते वालक पास पधारे ॥
कह्यो वालको वेद पढैये । कह्यो वाल पूत सुनलै ये॥८५॥

---

(१) श्रुति-—प्रजापतिर्ब्रह्मा देवान् सृष्ट्वा केनचिन्निमित्तेनाज्ञानिनो भूयासुरिति देवाञ्शशाप । तदनन्तरताननुगृह्णन् देवानामन्योन्यं पितृत्वं पुत्रत्वं च ददौ ॥ अर्थ यहः—प्रजाका पति ब्रह्माजी सबदेवताओको रचिकर तथा कोई कार्यरूप निमित्तकर अज्ञानि होवो इसप्रकार देवताओको शाप देतेभये तिसके अनन्तर तिनोंपर अनुग्रह करतेहुए ब्रह्माजी देवताओको परस्पर पितापणा तथा पुत्रपणा देतेभये ॥ इसश्रुतिकर देवते धर्ममार्गमें नष्टसज्ञावाले होतेभये, पुत्रोंसे वेद पूछिकर पुत्रसंज्ञाको प्राप्तभये इसकहनेकर ज्ञानवृद्धको पितारूपिता दिखाई, यह संक्षेपार्थ है ऋषिप्रसंग आगे कहिते हैं।
(२) नारदादि ॥

मेरे शिष्य होहुगे जवही। वेदपढावो तुमको तवही ॥
क्रोधभरे उरमै ऋषिसारे। तव ब्रह्माके पास पधारे ॥ ८६ ॥
देवदधीच पूतहै जोई। हम अतिवृद्ध वाल अतिसोई ॥
वेदपढनहित हम ढिगगए। पूतपूतकरि मुखो अलए ॥ ८७ ॥

दोहा।

मेर होवो शिष्य जब, तभी पढावों वेद ॥
यों सुन वालकवेन प्रभु, मनमें वढ्यो सुखेद ॥ ८८ ॥

चौपाई।

तब चतुरानन बैन बखाने। विद्यावृद्ध वृद्ध सुर माने ॥
तुम अतिवाल वृद्ध सो कहिये। होयशिष्य विद्याको लहिये ८९ ॥

दोहा।

यों चतुरानन बैन सुन, गए ऋषीसर सर्व ॥
दधीच पूतके शिष्यवहु, भये मिटाइ सुगरव ॥ ९० ॥

चौपाई।

तातें तुमहो पितासमान। यों विवेकप्रति पुरुष बखान ॥
हमपर ऐसी दया सुकीजे। सगलो मोह दूरकरदीजे ॥ ९१ ॥
या अवसरपुन शांति सुआई। उपनिषत सुताके संग सुहाई ॥
शांति पुरुषको कीन उचार। उपनिषतकरे पदवंदन थार ॥ ९२ ॥
शांतिन ऐसे करो बखान। उपनिषत अहै ममसात समान ॥
ततबोधको दए उपाइ। तातें हम इन लागे पांइ ॥ ९३ ॥

(१) देवने मानतेहै ॥

दोहा।

माता औ उपनिषतमैं, बडो अंतरो जान ॥
बहुदृढबन्धनको करे, यह करे बन्ध सभहान ॥ ९४ ॥
पुन उपनिषत विवेकपिख, अभिवन्दन तिहवार ॥
बैठी किंचत दूर तिह, पूछत पुरुष विचार ॥ ९५ ॥
कहो अंब एते दिवस, कहि कहि करे बितीत ॥
उपनिषत बखाने पुरुषको, सुनो इकागर चीत ॥ ९६ ॥

चौपाई।

मठमझार पुन शून अगार। मूरखजनकी संगतधार ॥
आपददिन इहभांति बिताए। कहांकहो मै अतिदुःखपाए ९७

दोहा।

कह्यो पुरुष वहिततकछु, जानतथे पुन तोहि ॥
उपनिषत कह्यो कहिजानहै, सगल व्यापे मोहि ॥ ९८ ॥

चौपाई

ते निजइच्छाके अनुसार। मेरो अरथ सुकरें उचार ॥
अरथ विचारविना इंउ कलपैं। द्रवेंडागणज्यों बाणी जलपैं ९९
परको ठाग द्रव्य तिह हरें। याहित मोहि विचारण करें ॥
मै उपनिषत मोक्षको कारण। पेट हेत सठ करें सुधारण १००

दोहा।

पुरुषकह्यो सुन मात पुन, मोप्रति करो उचार ॥
किहविध बासरतेंविते, भाखो सगल विचार ॥ १०१ ॥

(१) मेरे पीछे लग गए। (२) द्रवणागण कहिये जैसे द्राविडदेशस्थपुरोषोंकी भाषाको सुनकर कल्पना करतेहै तद्वत् वाणी कहतेभये। वा द्रवणागण कहिये मेंडकोंका समुदाय ॥

दोहा।

पुरुषप्रश्न उपनिषत सुन, लागी करन बखान ॥
गुलाबसिंह वहिवाक पुन, साधधरो निजकान ॥१०२॥

उपनिषदुवाच ॥

चौपाई।

ता मै चली बडोपथ जहां। देखी यज्ञविद्या तहां ॥
इत कृष्णाजिन अग्निजलाई। इत समधाघृत जूपसुहाई १०३
स्रोआलौ सभमांजन हाथ। इष्टिपशु मख सोम सुसाथ ॥
कर्मकांडकी पद्धति जोई। नीके मुखो अलाए सोई १०४
तव मै मनमै कीन विचारा। एहु धरे बहु पुस्तक भारा ॥
एक छु ततपछाने मेरा। कोदिन ईहा करों बसेरा १०५॥
तव मै ताढिग शीशु झुकायो। तिन मोको पुन एहु अलायो ॥
कहु कल्याणी वांछतसार। तब मै तिनसों कीन उचार १०६
मै अनाथ दूर मम नाह। तोहि समीप बसनकी चाह ॥
तव तिन मोको एहु बखानी। कौनकाज तूंकरें कल्याणी १०७
तव मैं कह्यो जुपुरुष उदार। ताको रूप सुकरों उचार ॥
जातैं विश्वउदे यह होई। जामै रहे लीन पुन सोई १०८॥
जाकेभास निखलजग भासे। सहजानंदसु ज्योति प्रकासे ॥
शांति निरंतर अक्रेरूपा। निरावयवसुअसंगअनूपा १०९

(१) कालेमृगकी चर्म। (२) स्रुवा—उपभृत्‌ध्रुवाइत्यादि पात्र। (३) दर्शपूर्णमास इष्टि तथा हठपशु तथा मखयाग तथा सोमअग्निष्टोम तथा पद्धति इति कर्तव्यता क्रम। (४) श्लोक—यस्माद्विश्वमुदेति यत्र रमते, यस्मिन्पुनर्लीयते भासा यस्य जगद्विभाति सहजानन्दोज्ज्वलं यन्महः। शान्तं शाश्वतमक्रियं यमपुनर्भावाय भूतेश्वर द्वैतध्वांतमपास्य यान्ति कृतिनः, प्रस्तौमि तं पूरुषम् ॥ १ ॥ इसश्लोकका अर्थ मूलमें लिखाहै, ॥

द्वैत अंधेरो दूर मिटाइ। जामै मिले सुमोक्षी जाइ॥
तत्वज्ञानते पावे मोक्ष। पुरुष पुरातन है निरदोष११०
यहि पुरुष उर ब्रह्म पछानो। ब्रह्म न यांते भिन्न सुमानो॥
विनाज्ञान भासे पुन भेद। ज्ञान जनावे ब्रह्म अभेद १११
ऐसे बचन सुमेउरधार। यज्ञविद्या कीन उचार॥
निखलक्रियाको करता जोई। कैसे पुरुष ब्रह्म पुनहोई११२॥
क्रिया भवफासीपर हरे। ज्ञाननमुक्तिसु काहू करे॥
वेदकहें निजकर्म सुकरे। जौलौ जीवे नहिपर हरे११३॥

दोहा।

तातै तेग्रह रापणे, सरेन मेरो काज॥
पर तदपि तूं ऐंवकर, ज्योंमम भाखों आज ॥ ११४ ॥
करताऔ पुन भोक्ता, पुरुष सुअहे विसाल॥
ऐसै निसवासर कहो, वसोसु किंचतकाल॥ ११५॥
यामैंकहो सुकोन तव, लागत याजग दोष॥
योंसुन राय विवेक पुन, बोल्यो धार सुरोष ॥ ११६ ॥

चौपाई।

अहो मखनकोधूम सुकारा। यज्ञविद्याके नैन मझारा॥
तांकर मलनदृष्टि वहुभई। यों कुतर्क यांते निरमई११७॥
यज्ञविद्या है निरबुद्ध। ईश्वर पुरुष अकरता शुद्ध॥
चुंबक मणि ज्यों निहचल अहै। तासमीप लोहाकृत गहै११८॥
त्यों ईश्वरकी संगतपाइ। माया लेवे निखल उपाइ॥
अज्ञान जनत वन्धनहै जोई। कैसें कर्म निवारें सोई॥११९॥

---

(१) श्रुतिः—(कुर्वन्नेवेह कर्माणि, जिजीविषेच्छतꣳसमाः)अर्थयहः—इस कर्माधिकारभूलोकमें अग्निहोत्रादि कर्मोंकूं कर्ताहूआही सौवर्षपर्यंत जीवनेकी इच्छा करे।
(२) ईश्वर औ पुरुषजीवात्मा ॥

तमज्यों तमको दूर नकरे। त्यों नही कर्म सुबन्धनहरे॥
तातै यज्ञविद्या है जोई। सम्यक अर्थ नजाने सोई १२०

दोहा।

लीनें अंधेरो भवन तम, करेसुजब प्रकास॥
तब बिनज्ञान सुकर्मते, होवै बन्धननास॥ १२१॥
बिन आत्मके ज्ञानते, मुक्तिपंथ नहि आन॥
ऐसे बदनसरोजते, करे सुबेद बखान॥ १२२॥
कह्यो पुरुष उपनिषतको, बहुरों कहो विचार॥
यज्ञविद्या तोहिको, कैसे कीन उचार॥ १२३॥

उपनिषदुवाच॥

चौपाई।

यज्ञविद्या बहुर विचार। मोको याविध कीन उचार॥
सखी सुतेरी संगाति जोई। हमरे शिष्य बिगारे सोई १२४

दोहा।

फल अनित्य सोजानकै, करेन सादर करम॥
तेरी संगाति पाइके, जाने निखल सुभरम॥ १२५॥
तातें वांछतदेशको, करो गमन ततकाल॥
तब मैं ताको छोडिकर, चाली बहुर उताल॥ १२६॥
कर्मकांडकी सहचरी, पिखी मीमांसा जाइ॥
बहु प्रकार भाषे कर्म, बहु अधिकारी पाइ॥ १२७॥
तामै कह्यो समीप तव, बसोंसु किंचतकाल॥
तब उन कह्यो सुकर्ममुहि, भाषो सखी बिसाल॥ १२८

(१) अन्धेरकेर ग्रस्त ग्रह। (२) ऋतेज्ञानान्नमुक्तिः। ज्ञानादेव तु कैवल्यम्। नान्यः पन्थाविद्यतेऽयनाय इत्यादिवेद॥

चौपाई ।

तव मै कह्यो पुरुषको रूप । मै भाखोंगी परम अनूप ॥
निज शिष्यनको बदन निहार । बहुर मीमांसा कीन उचार १२९
फलउपभोग योग्यहै जोई । पुरुष बखानेगी यह सोई ॥
करो कर्म इम ताहि उचारियो । तव तांशिष्यअनुमोदनधारियो
तव तांशिष्य एकथो जोई । मीमांसाकोरिद अंगम सोई ॥
नाम कुमारलस्वामी वाको । कराविचारतिनभाख्योताको ॥
करम निफल उपभोगता जोई । उपनिषत कहे नहआत्मसोई ॥
किंतु कहे अकरता सोई । भुक्ता नाहिकदाचित होई १३२
ऐसे आत्म रूप सुजोई । करम उपयोग्य करे नह सोई ॥
बहुरो बोल्यो अपर विचार । ज्योंहै त्यों ममकरो उचार १३३
पुरुषदोइ जगभीतर गाए । एक जीव इक ईश बताए ॥
मोह अंधेरे जीव दवायो । ईश्वरसकल सुसाक्षीगायो १३४
वांछे करमफल जीव सुजेते । ईश्वर देवे ताको तेते ॥
जीव करममें है अधिकारी । ईश अकरता वेदउचारी १३५॥
कल्पतवन्ध जीवमै अहे । नित्यमुक्ति परमेश्वर कहे ॥
सुन विवेक भूपति हरखाने । साधुसाधु मुखमाहि बखाने ॥
होवै भले सुदीरघ आयो । जाने याबिध अर्थ अलायो ॥
दोन सपरण बेदमै गाए । रहें इकठे सखा बताए ॥१३७॥

---

(१) यस्माद्विश्वमुदेति, इस पूर्वोक्त श्लोककर पुरुषका रूप कहा। (२) साधुसाधु इसप्रकार स्वीकार किया । (३) (द्वासुपर्णा सयुजा सखाया, समानं वृक्षं परिषस्वजाते तयोरन्यः पिप्पलं स्वा द्वत्त्यनश्नन्न्यो अभिचाकशीति ॥ अर्थयहः—दो पक्षी जीवात्मा परमात्मा सो कैसे हैं साथ रहिनेवाले हैं तथा परस्पर अनुकूल है, तथा एक शरीररूप वृक्षकूं आलिङ्गन (स्वीकार,) करतेहैं तिन दोनोमें एक जो जीव है सो स्वादु (पक्क) कर्मके फलकू भोगताहै और अन्य जो परमात्मा है सो तिस कर्मफलकू नहीभोक्ताहूआ प्रकाशता है नाम साक्षिरूप होयकर देखताहै ॥

समान वृक्षमै कीन सुवासा। एक खाइ फल एक उदासा॥
बहुर पुरुष उपनिषत अलयो। कहो मात तहबहुरसुभयो १३८
सुन शिष्यनको एहु विचार। मिमांसा मोप्रति कीन उचार॥
जह इच्छा तह कीजैगौन। लायक नाहि हमारे भौन १३९
मीमांसाते मैचली अगारी। तर्कविद्या और निहारी॥
बहुते शिष्य सुसंग सुहाए। सेवत ताहिं निरंतर पाए१४०॥
धनकी इच्छा मनमै धार। बैठी भूपति सभामझार॥
जॅलप वितंडावादॅ बिसाला। छॅलनिग्रहबहुकरेकराला १४१
सांख्यविद्या बहुर निहारी। बैठी लांबी भुजा पसारी॥
पुरुषनको बहुभेद बखाने। ततनकी गणना उर ठाने१४२
कहे प्रकृतिसु जगत उपाये। महदादिक क्रमभाख सुनाए॥
बहुर पतंजलविद्या देखी। पुरुष भेदॅ बहुकहे विसेखी१४३
मैसभ हनके निकटि सुगई। भाष्यो ईहावासहित अई॥
तब तिन कह्यो सुकरम अलाइ। मैपुन वही सुदयो बताइ१४४
ईश्वर निखल सुजगत उपाए। पुरुष नाम पुन वही कहाए॥
क्रोधयुक्त तामै इक भई। फुरेहोठ यों वात अलई १४५॥

(१) (उभयपक्षस्थापनवती विजिगीषुकथा जल्पः) अर्थयहः—वादी प्रतिवादी इन दोनोपक्षोके स्थापन करनेहारी ऐसी जा परस्परजीतनकी इच्छावान् वादी प्रतिवादी दोनों-की प्रश्नउत्तररूप कथाहै ताका नाम जल्पहै। (२) (स्वपक्षस्थापनहीना विजिगीषु-कथा वितंडा) अर्थ यहः—आपणे पक्षके स्थापनतैं रहित ऐसी जा जीतणेंकी इच्छावाले पुरुषोंकी परस्परकथा है ताका नाम वितंडाहै। (३) (तत्वबुभुत्सोः कथा वादः) अर्थ यहः—तत्ववस्तुके बोधनकी इच्छावाले पुरुषोकी जापरस्परप्रश्नउत्तररूप कथाहै ताका नाम वादहै। (४) (अर्थान्तरेण प्रयुक्तस्य शब्दस्यार्थान्तरवर्णनं छलम्) अर्थ यहः—अन्य-अभिप्रायसें कथनकियेहुए शब्दके अन्यअर्थके वर्णनका नाम छलहै। (५) सत्वरजतम-गुणकी समअवस्थाका नाम प्रकृतिहै ता प्रकृतिसे महत्तत्व, महत्तत्वसे अहंकार अहंकारसे पञ्चतन्मात्रा, पञ्चतन्मात्रासें पञ्चभूत, औ दश इंद्रिय ये षोडस विकार तथा पुरुष जीवात्मा ये पचीस तत्वहैं। (६) नानापुरुष (जीवात्मा) मानेहैं॥

कौन बलाय कहांते आई। जाने ऐसी वात अलाई ॥
ऐसी बुद्धि तुमारी यातैं। धक्केखातफिरतहै तातैं ॥१४६॥
हापापिनि ईश्वरहैं जोई। किहबिध जगत् उपावे सोई ॥
एक कहें प्रधान उपायो। एकै कहें प्रमाणु जायो॥१४७॥
योंसुन रायविवेक सुजोई। लागो करण उचारण सोई ॥
तरकविद्यालो सभ जेती। दुष्टबुद्धि जानी सभतेती १४८
कार्य अहै निरवलजग जेतो। ईश्वर सगल उपायो तेतो ॥
एतीबाति नजानत जेई। हैं अति मूरख जगमै तेई १४९॥
प्रधान प्रमाणुलौ समजेते। कलपत अहै सगल पुन तेते ॥
भूमि नीर अरु पावक पवना। कलपत सगल स्वप्नपुरभौना ॥
गन्धर्वनगर पुन इंन्द्र सुजाल। तांसम जान असत बिसाल ॥
सीपरूप ज्यों रज्जु भुजंगा। ब्रह्मअज्ञानजन्योजगअंगा १५१

दोहा।

ब्रह्मज्ञानके उदेते, होवतहै पुन लीन ॥
ज्यों जागेते होतहै, स्वप्न सगल भ्रम खीन ॥ १५२ ॥

चौपाई।

विकारसंक तिहभीतर जोई। मूढमाति उर कल्पी सोई ॥
शांति सदा वहिज्योति प्रकासी। नित्यप्रकास सदा अबिनासी ॥
जगत गन्धर्व नगर सुउपाए। रंचकनाहि विकार सुपाए ॥
नीलमेघ अरु धूल अपारा। नभमै करे नरंच विकारा॥१५४

पुरुष उवाच ॥

चौपाई।

संदेहदवानल चीतमझारी। अंमृत सिंच विवेक निवारी ॥
मेरो चीतसु अतिहरषयो। भलो बिचारबिवेक अलयो१५५

(१) सांख्यी। (२) नैयायिक ॥

दोहा ।

पुरुष कह्यो उपनिषतको, बहुरों करो प्रकास ॥
तरकविद्या पासतैं, कैसे भई उदास ॥ १५६ ॥

उपनिषदुवाच ॥

सर्वभईते क्रोध मन, ऐसैं कौन बखान ॥
कहे जीवकी मुक्ति यह, सकलविश्वकर हान ॥ १५७ ॥
तातैं नास्तकपंथको, एअब करे उचार ॥
केसनतैं याको गहो, करो भलीविध मार ॥ १५८ ॥

चौपाई ।

पुरुष नारायण ईश्वर जोई । तव मै चीत चिताऱ्यो सोई ॥
कह्यो पुरुष ईश्वरहै कोइ ।तव करुणाकर जानो सोइ१५९
उपनिषतकह्यो जो आपनजाने। ताको उत्तर कौन बखाने ॥
हरषसंयुक्त पुरुष पुन कहे । किहविध मेपरमेश्वर अहै१६०
उपनिषतकह्यो परमेश्वर जोई । तोतेभिन्न नही पुन सोई ॥
तूं परमेश्वरते नहीं न्यारो । ऐसै सदा चीत निरधारो १६१

दोहा ।

माया अहै अनादि जो, ताकी संगति पाइ ॥
जल सूर्य प्रतिबिंबज्यों, भेदवंत दिखलाइ ॥ १६२ ॥
बहुरो पुरुष विवेक प्रति, कह्यो जोर कर दोइ ॥
भगवन अर्थ उपनिषतको, कह्यो न निश्चे होइ ॥ १६३ ॥

चौपाई ।

मै अवच्छिन्न भिन्न पुन जोई । जरामरण धरमा पुन सोई ॥
नित्यअनंद चिदात्म गाए । परंब्रह्म मम रूप बताए १६४ ॥

(१) शरीरा वच्छिन्न । (२) उपनिषत् ॥

कह्यो विवेक पदार्थज्ञान। अबलग तोहिभयो नहि भान॥
पदार्थज्ञान उपावसु जोई। कह्यो पुरुष अब भाषोसोई १६५
कह्यो विवेक सुनो मनलाई। तोको देहु उपाइ बताई॥
तत्वंपदके अर्थ भनीजे। एकवाच्यपुन लक्ष कहीजे १६६
वाच्य अभिन्न कदाचित नाही। लक्षमाहि विरोधसु नाही॥
लक्ष चिदात्म है ये जोई। सो मैंयों उर चितवो सोई १६७
निखल उपाधिसु दूर निवारो। बहुरो तत अर्थ निरधारो॥
तत्वमसि यों भाखे वेद। तातें निखल मिटावे भेद १६८
निखलद्वैतको दूर निवारो। चिदानंद उर आत्म धारो॥
बहुर पुरुष उपनिषत अलयो। तिहउपरंत कहो क्याभयो १६९

उपनिषदुवाच॥

दोहा।

तबते सर्व सुदुष्टमाति, मोहि फरनकेकाज॥
दौरीचारों ओरते, मैंतब चाली भाज॥ १७०॥
सीतापति रघुवंशमणि, रामशील यशभौन॥
जिह दंडकवनमे गए, तिह मैकीनो गौन॥ १७१॥
तिह मंदर परवतविषे, मधुसूदन असथान॥
ताहिनिकट जोदशामें, भई सुकरों वखान॥ १७२॥

चौपाई।

किंनहूंमै भुजदंड प्रहारे। तोडि मणि करकंकण तारे॥
चूडामणि शीशते लीनो। खैंचे केश बहुतदुःख दीनो १७३

(१) केईकपण्डतोंने. सधिविभक्तिरूप जो भेरेभुजदण्डहै सो तोडडारेहैं तथा कंठकी मणिस्थानी अहंग्रह उपासनाहै सो फोडडारीहै अर्थात् खैंचकर मतीक उपासनामे स्थापन करेहैं औ करके कंकणस्थानापन्न निष्कामकर्म तथा विधिहै इनदोनोको हरणकरे है और चूडामणीस्थानापन्न जो तत्वमस्यादिमहावाक्यहै तिनको मतवादियोंने शीशकी न्याई प्रधान

दुरविदग्ध वहुता वनमाही। दासीकरन सुमेंडरचाही ॥
विछुरी मम विवेकते जान।वहुविधमेदुःखदयोअजान१७४
कह्यो पुरुष वहुरोंभयो जोई। मोको सगल सुनावो सोई ॥
कहि उपनिषत सुनो मनलाई। तव मेरे हरि भये सहाई १७५
तव मधुसूदनके असथान। निकसे पुरुष परमवलवान ॥
लेकरगदा सगलतेडानी। तव मोको वहि छाडि पलानी ॥

राजोवाच ॥

दोहा।

भागविहीन विमूढजे, करेंते अपमान ॥
सहे न उरमै रंच वहु, जगसाक्षी भगवान ॥ १७७ ॥

पुरुष उवाच ॥

वैदुध्यादशदिश गयी, दंडक विपनमझार ॥
तवते कौन सुविधभई, मोको करो उचार ॥ १७८ ॥

उपनिषदुवाच ॥

चौपाई।

गीताके आश्रमकीओरा। दौरी मै उर डर्‌यो सुमेरा ॥
नूपर टूटिपरी पथमाही। वरी जाय आश्रमकेमाही१७९
तव गीता दुहिता मम प्यारी। पेखिकह्योआई महतारी ॥
मातमातयों मुखो अलायो। मैंपदपंकजशीशु झुकायो१८०

-मुझ उपनिषदसे लीयाहे अर्थात् अंशअंशी, विकारविकारी, कार्यकारण, प्रकाश्यप्रकाशक, आधेयआधार, उपासकउपास्यादिक भान् (ज्ञान) कर अखंड अर्थका खंडन कियाहे तथा अवांतरवाक्यरूपी केश तिनवादियोंने मेरे खैचेहै भाव यहहैः—(सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म) इसअवांतरवाक्यमें सताजातिमानीहै तथा ज्ञानादिक गुणमानतेहैं इति।
(१) चरणभूषण। (२) मेरे चरणोंमें शिर निवाया ॥

भलीभांति मुहि अंकमिलाइ। हेमपीठमै ल्यो बैठाइ॥
भयो वृत्तांत निखल तिनजान्यो। बहुर सुमोकोएहु बखान्यो १८१

दोहा।

मात डरो नहि चीतमें, तेरो कर अपमान॥
दुष्ट यथेष्टमें रमेंजे, ताहि हने भगवान॥ १८२॥

चौपाई।

श्रीपति योंमुख आप बखाने। दुष्टसुजे उपनिषत नमाने॥
क्रूर नराधम हैं जग जेते। असुरयोनिमें डरों तेते॥१८३॥
सुनकर पुरुष अनंद तब भयो। यों मुखमाहि सुबैन अलयो॥
सुन्यो अर्थमै पूर्व जोई। उपनिषत करावत निश्चे सोई॥

कवि रुवाच॥

दोहा।

श्रवण मनन पूर्णभयो, निखल संदेह निवार॥
निदध्यासनकी चाह उर, भई सुपुरुष उदार॥ १८५॥

चौपाई।

याअवसर निदध्यासन आयो। बैठ सभामै एहु अलायो॥
विष्णुभक्तिने मोहि पठायो। तातै मै ईहाचल आयो १८६॥
गूढ हमारो आसय जोई। उपनिषत विवेकप्रति भाखोसोई
दोनोको यहबात प्रकास। पुरुषमाहि तूं करी निवास १८७

(१) गीतामें कहाहैः—तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्। क्षिपाम्यजस्त्रमशुभानासुरीष्वेवयोनिषु॥ अर्थयहः—हेअर्जुन—द्वेषकरणेहारे तथा क्रूर तथा नरोंविषेअधम तथा निरंतर अशुभकर्मोंकूं करणेहारे ऐसे तिन आसुरमाकृतिपुरुषोंकूं मै परमेश्वर अत्यन्त क्रूर व्याघ्रसर्पादिक योनियोंविषे ही गेरताहूं। (२) श्रवणंनामाद्वैते ब्रह्मण्युपनिषदांतात्पर्यावधारणम्। मनन नाम युक्तिभिरनुचिन्तनम्। निदिध्यासन नाम विजातीयप्रत्ययतिरस्कारेण सजातीयप्रत्ययप्रवाहीकरणम्॥

वहुर विलोकसु एहु वखानी। यह वैठी उपनिषत सुरानी॥
पुरुप विवेकसंग सुहाए। चलौ नजीक सुदेहु सुनाए१८८
एसवखाननिकट वहुगयो। उपनिषतसमीप सुवाक अलयो॥
देवी विष्णुभक्ति है जोई।ताहि वखान्यो सुनिये सोई१८९
संकल्पयोनि देवता सारी। यह नीकेमे आप निहारी॥
उपनिषतसंगभो तूं अव भई। कंन्या तेउरमै निरमई॥१९०॥
और प्रबोधचन्द्र सुत जान। मेरो कह्यो सुसत्य पछान॥
क्रूरसुभावजु कन्या अहै। उपजी निखलसंवन्धी दहै१९१
ब्रह्मविद्या कन्या जोई। मनमैं करो संचारण सोई॥
संकर्षणविद्याको उरधार। मनके उदर कन्या डार १९२॥
प्रवोधचन्द्र पूत पुन जोई। पुरुषसमर्पणकीजे सोई॥
विवेकसहित तूं मेरे पास।उपनिषत करो अव सहजनिवास

दोहा।

विष्णुभक्ति जोभाष्यो, सोईकरौं न और॥
योंकहि संग विवेकके, गई इकंत सुठौर॥ १९४॥
निद्ध्यासन तव पुरुषके, कीनो आन प्रवेश॥
धन्यो पुरुष उर ध्यान तव, जाकर हरे कलेश १९५॥
नेपथ्यमाहि प्रवेशकर, दोनो नयन मिलाइ॥
अद्भुतरूपध्याय उर, वोल्यो सहज सुभाइ॥ १९६॥

---

(१) संकल्पमात्रतेउत्पत्तिहै जिनोकी न मैथुनसे तथा चश्रुतिः—(ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्) इहासें आरंभकरके (इदंसर्वमभवत्) ईहांपर्यंतसंकल्पप्रभवत्व दिखायाहै वृहदारण्यकमें इसप्रकारमैं योगसामार्थ्यजन्यध्यानसे जान्या। (२) विवेककेसंकल्पसें। (३) जगत्का नाशक होनेते क्रूरसुभाववाली है। (४) आत्मसाक्षात्कार रूपा। (५) योगकर आकर्षणरूप। (६) निरतिशय ब्रह्मप्रकाशक॥

मन वक्षस्थल फोरकै, कन्या भई प्रकास ॥
सहत समग्री मोहको, कीनो एक ग्रास ॥ १९७ ॥
तडता समदमकी महां, दिशको तिमर मिटाइ ॥
अंतरध्यानक्षणमै भई, ऐसोरूप दिखाइ ॥ १९८ ॥
यह प्रबोधशशि उपज्यो, ताको भ्रात विसाल ॥
सभाप्रवेश प्रबोध तव, कीनो वाहूंकाल ॥ १९९ ॥
कहांगयो किनभयो भव, लीनभयो ततकाल ॥
जाउपजेते भयो यों, सोमै बोध बिसाल ॥ २०० ॥
परकरमदेपिखभाष्यो, यहहै पुरुष उदार ॥
चलों समीप सु याहिके, करों सुपाद जुहार ॥ २०१ ॥
जाइसमीप सुपुरुपके, भगवनमुखो उचार ॥
हौं प्रबोधउपनिषत सुत, बन्दो पाद तिहार ॥ २०२ ॥
पुरुष विलोक आनंदउर, हेसुत परम अनूप ॥
मिलोसु मेरे अंकमें, कीजे शीतल रूप ॥ २०३ ॥
मिल्यो प्रबोध सुपुरुपको, शीतलचन्द उदार ॥
पुरुष अनंद सुहोय उर, लागो करन उचार ॥ २०४ ॥
अहो तिमर पट फाटियो, भयो प्रभात अनूप ॥
निखलकलेश बिनाशया, पायो परम सरूप ॥ २०५ ॥
मोह अंधेरे बिनाशकर, नींद विकल्प सुमार ॥
बोधशशि यह ऊपजो, जाकी प्रभा अपार ॥ २०६ ॥

सवैया।

आज परात्म पूरन जो, वहि पूरन रूप सुदेत दिखाई ॥
बन्धन जो सभ दूरभये, रविसी उरअंतर ऊजलताई ॥

(१)-(ससाररात्र्यपगमा द्वोधः प्रातः क्षणो मतः) अर्थयहः—ससाररूपी रात्रीके जानेसे बोधही प्रातःक्षण मान्याहै। (२) अज्ञान। (३) भ्रमही निंद्रा है ॥

आज कृतार्थभूरभये सुमिटी निजआतमकी कलखाई ॥
बोधकरे सभकाजसंपूरन, पूत सुपूतभये सुखदाई ॥ २०७ ॥

दोहा।

श्रद्धा मति विवेक पुन, शांति यमादिक धार ॥
सर्वात्मप्रभविश्व जो, सोहम भए उदार ॥ २०८ ॥
हरिकी भक्तिप्रसादते, भए कृतार्थ रूप ॥
बन्धन सगल मिटाइया, पाए ज्ञान अनूप ॥ २०९ ॥
बैठ इकंत सुमोन गहि, मनकर कीनो ध्यान ॥
शांतिभयो भय शोकहन, भयो मोह सभहान ॥ २१० ॥
यांप्रबोधहित भवनतजि, भवें भवारण्यमाहिं ॥
ताकोपाइ सुमुनिभयो, मैं निजभवन सुमाहिं ॥ २११ ॥
विष्णुभक्ति आई तवै, उरमै हरप अपार ॥
आइ समीप सुपुरुषके, कीनो एहु उचार ॥ २१२ ॥
वहुतकालकर फले जग, मोहि मनोरथ आज ॥
शांतिअराति सुतवपिखों, भये सगल मम काज ॥ २१३
पुरुष कह्यो तव कृपाते, कोफल दुहकर आहि ॥
ऐसै सुखो अलाइकर, पर्‍यो सुचरननमाह ॥ २१४ ॥

दोहा।

विष्णुभक्ति सुउठाय तिह, कीनो एहु उचार ॥
पूतकहो प्रयकाजकछु, पुन मैं करों तिहार ॥ २१५ ॥
पुरुप कह्यो अव याहिते, परे नप्यारे काज ॥
जीत अराति विवेकनृप, भयो कृतार्थ आज ॥ २१६ ॥

(१) श्रद्धा गुरुवेदवाक्ययोर्विश्वासः,—विवेकमतिर्नित्यानित्यवस्तुविवेकविषया—शा-न्तिर्दार्ढ्यम्—यमश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥

रुजविहीन आनंदपद, थाप्यो ताहि सुमोहि ॥
विष्णुभक्तिपदवन्दना, करेकाज सभ तोहि ॥ २१७ ॥

सवैया ।

यद्यपि पूर्ण आहि मनोरथ तदपि मात सुएहु वरे ॥
रुचिके अनुसार करें बरषा, घनभूपति भूमिसुपालकरे ॥
तेंकरुणाकर लोक महात्म, आतमको तम दूरहरें ॥
भवसागरधार बिषे ममता, गहि बोधजहाजसु पार परें ॥२१८॥

दोहा ।

प्रत्यक्तत्व निज आतमा, कीरति वरमाभूप ॥
मनोवृत्ति सभनाटकै, कोविदलखें अनूप ॥ २१९॥

सवैया ।

यह नाटकहे रसुभूपतिके उरमाहि सुभाऽसुभ ज्ञानभयो ॥
तजिया जगमाहि कुपंथ वडो शुभपंथ महीपति चीतलयो ॥
बिसमाय रह्यो उरभीतर सो सुशिलूषनको बहु दानदयो ॥
बहुनाटकहैं भवमंडलमें नरनाहनको यह नाटनयो ॥२२० ॥

दोहा ।

कहनेको यह नाटहै, दरपन अहै अचार ॥
पावै पावन मोक्षको, कीने याहि विचार ॥ २२१ ॥
गौरी जननी लोकमें, राया जनक महान ॥
गुलाबसिंह सुत ताहिके, नाटक कीन वखान ॥२२२ ॥
कीरति पूरनलोकमै, पूरण परमानंद ॥
पूरन पददातारप्रभु, वन्दौ श्रीरघुनंद ॥ २२३ ॥

(१) अन्तः करणमे जो अज्ञान ॥

जिह अज्ञान निवारयो, दीनो मोक्ष अपार ॥
मानसिंह गुरुचरनको, वन्दौ वारंवार ॥ २२४ ॥

शंकरछन्द ।

रस वेद औ वसु चन्द संवत लोक भीतर जान ॥
नभमास भृगु पुन वासरे दशमी वदी पहिचान ॥
गुरु मानसिंह पदारविंद अलंवना उरठान ॥
कुरुक्षेत्र प्राचीकूलतट यह कीन ग्रन्थ वखान ॥ २२५ ॥

श्लोक ।

शुद्धाशुद्धश्च संशोध्य गुढार्थाश्च प्रकाशिताः ॥
अविशिष्टामशुद्धिश्च शोधयन्तु मनीषिणः ॥ १ ॥
गुरोः कृपां समासाद्य रचयित्वा सुटिप्पणीम् ॥
मया गुरुप्रसादेन गुरोः पादे समर्पिता ॥ २ ॥

इति श्रीमन्मानसिंह शिक्षित गुलावसिंह विरचिते प्रबोधचन्द्रोदय नाटके
षष्ठोऽङ्कः समाप्तः ॥ ६ ॥

इन्दुस्कन्दाङ्कचन्द्रेऽब्दे द्वादश्यां श्रावणे तिथौ ॥
वनखण्डिप्रसादाख्यात्सम्पूर्णा टिप्पणी शुभा ॥ १ ॥

) अर्थ यहः—इसग्रन्थमें शुद्धाऽशुद्धका शोधन करके गूढअर्थोंका प्रकाश कियाहै
२। (बाकी) रहीहुई अशुद्धिको बुद्धिमान् पुरुष स्वय शोधलेवे ॥ १ ॥
कृपाको प्राप्त होयकर मैं गुरुप्रसादने सुंदरटिप्पणिका निर्माणकरके श्रीगु-
चरणोमें समर्पित कियीहै ॥ २ ॥

इतिश्री १०८ मत्परमानन्दोदासीन शिष्यगुरुप्रसादविरचिता प्रबोधचन्द्रो-
दयनाटकटिप्पणिका समाप्ता ॥ १ ॥ इति शम् ।